Chapter-4

==

अध्याय : चार

::आर्थिक एवं पारिवारिक संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्दजी का कथा-साहित्य ::

==

PAGODA

:: अध्याय : चार ::

: आर्थिक एवं पारिवारिक संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्दजी का कथा-साहित्य:

पूर्ववर्ती अध्याय में स्पष्टतया निरूपित हुआ है कि जीवन में जो अनेक प्रकार के संघर्ष चलते रहते हैं, उनमें आर्थिक और पारिवारिक संघर्ष भी है और प्रेमचन्दजी को भी इनसे दो-चार होना पड़ा है। ये दोनों प्रकार के संघर्ष परस्पर जुड़े हुए हैं। यों तो सभी प्रकार के संघर्षों का एक-दूसरे से किसी-न-किसी प्रकार का संबंध रहता है। एक संघर्ष दूसरे संघर्ष को जन्म देता है। परंतु उक्त दो संघर्षों का करीबी रिश्ता इसलिए भी बनता है कि परिवार को चलाने के लिए अर्थ की आवश्यकता रहती है और यदि अर्थ का अभाव हो, घर में दरिद्रता का साम्राज्य हो तो परिवार की समस्याएं अनेकगुणित हो जाती हैं। उसी प्रकार परिवार की कोई समस्या भी आर्थिक समस्या में इज़ाफा कर सकती है।

उदाहरण के तौर पर मान लीजिए कि एक परिवार ठीकठाक चल रहा है। दो बेटे हैं। एक की आमदनी थोड़ी है, दूसरे की ज्यादा। परिवार बड़ा है और दूसरे की आमदनी पर ही प्रायः चल रहा है। ऐसे में बड़े की पत्नी के कारण घर में कलह होता है और परिवार दो हिस्सों में बँट जाता है, तो इसके कारण, अर्थात् इस पारिवारिक समस्या के कारण घर में आर्थिक अभाव के बादल छायेंगे जो पूरे परिवार को प्रभावित करेंगे। इस प्रकार से दोनों प्रकार के संघर्ष अनेक बिंदुओं पर मिले हुए रहते हैं।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है प्रेमचन्दजी के जीवन में उक्त दोनों प्रकार के संघर्ष प्रारंभ से ही रहे हैं। यद्यपि उनके एक जीवनीकार मदनगोपाल अपने दूसरे संस्करण में जगह-जगह यह कहते पाए गए हैं कि रूपये का जो मूल्य उस जमाने में था उसे देखते हुए कोई आर्थिक संकट वाली बात नहीं है। धनपतराय जब नवीं कक्षा में पहुँचे तो अजायबलाल ने पूछा कि कितने रूपये माहवार की आवश्यकता होगी। धनपतराय ने कहा था — " पाँच रूपये दे दीजियेगा। " फिर इसके नीचे अपनी टिप्पणी देते हुए मदनगोपाल ने लिखा है —

"पाँच रूपये महीना मिलने का जिक्र प्रेमचन्द ने अपनी ~~निर्धनता~~× निर्धनता का ढंढोरा पीटने के लिए किया। जिन दिनों यह लेख लिखा गया लेखक को याद है एक रूपया का बत्तीस सेर गेहूँ था, डेढ़ सेर घी, और आठ सेर दूध। सोने का भाव भी बीस रु. तोला था। एक अनुमान के अनुसार 1890 के एक रूपये का मूल्य आज एक सौ नहीं। चालीस-पचास अवश्य है। अजायब का चालीस रु. वेतन आज के दो हजार के बराबर बैठता है। " ।

अजायबलाल का यह वेतन प्रारंभ से नहीं निवृत्ति के समय था। दूसरे अजायबलाल पर जो पारिवारिक जिम्मेदारियाँ थीं उनके रहते इसे अच्छी हालत नहीं कह सकते। दूसरे गरीबी या दरिद्रता यह स्थिति-सापेक्ष शब्द है। अजायबलाल नौकरी में थे, अतः उस समय के माहौल से

लोगों से उनकी स्थिति अच्छी मानी जा सकती है , परंतु पारिवारिक उत्तरदायित्वों के कारण उनकी स्थिति कोई अधिक बेहतर नहीं समझी जा सकती । एक ही समान वेतनमान वाले दो व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति एक जैसी ही होगी , ऐसा नहीं कह सकते । हां , गुरसहायलाल ने जो अर्जित किया था , वह सब यदि उनके पास होता तो निश्चित रूप से उनकी स्थिति अच्छी होती । अजायबलाल की मृत्यु के पश्चात उपरांत तो प्रेमचन्दजी को बहुत कम रुपये ट्यूशन इत्यादि से मिलते थे । बाद में उन्हें जो नौकरी मिली उसमें प्रतिमास अठारह रुपये मिलते थे । आज के हिसाब से सौ रुपया उस समय के एक रुपया के बराबर गिनें तो भी कुल जमा 1800/- रुपये होते हैं । आज प्रतिमास 1800/- पानेवाले को कोई अच्छी स्थिति मानें तो मान सकता है । प्रेमचन्द के पूरे जीवन में हम आर्थिक संघर्ष की बात देखते हैं , प्रेमचन्द के समकालीन भी इसे स्वीकार करते हैं , इसके कारण प्रेमचन्द को दमतोड़ मेहनत करनी पड़ती थी और इसके कारण ही स्वयं मदनगोपाल ने उन्हें "कलम का मजदूर" कहा है , क्या यह सब गलत है ? क्या प्रेमचंद जैसा सीधा-सच्चा लेखक इस प्रकार का इतना ढोंग सफलतापूर्वक कर सकता है ?

हां , प्रेमचन्द चाहते तो इस गरीबी और दरिद्रता पर विजय पा सकते थे । अजायबलाल की मृत्यु के उपरांत कुछ वर्ष जरूर गहरे संघर्ष के रहे । पर बादमें भी जीवनभर जो संघर्ष प्रेमचन्द ने किया उसे वे चाहते तो टाल सकते थे । प्रेमचन्द यदि अपनी नौकरी और लेखन ही चालू रखते तो खूब कमा सकते थे । अलवर नरेश की ओफर स्वीकार लेते तो भी मजे से रह सकते थे । "हंस" और "जागरण" के घाटे में न पड़ते तो भी साफ बच सकते थे । बम्बई जाकर फिल्मी लोगों से समझौते कर लेते तो भी रुपयों की टकसाल पड़ सकती थी । पर यह सब प्रेमचन्द ने नहीं किया । परिणाम यह हुआ कि जीवन भर वे आर्थिक झंझटों एवं अभावों में रहे और उसका प्रभाव उनके लेखन में स्वाभाविक देखा जा सकता है । इस अध्याय में उनके आर्थिक एवं पारिवारिक

संघर्षों' को उनके कथा-साहित्य में टोहने का प्रयास हुआ है । अध्याय-यों में उसकी ब्यौरेवार चर्चा हो चुकी है, अतः यहां पर केवल उन संघर्षों' के कारण मुंशीजी के लेखन में किन परिमाणों का इजाफा हुआ है उन्हें विश्लेषित करने का प्रयत्न किया जायगा ।

आर्थिक संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में

मुंशीजी के जीवन में आर्थिक संघर्ष बराबर बना रहा । उसका असर उनके स्वास्थ्य पर भी हुआ है । उसके कारण उन्हें नौकरियों के लिए भी भागदौड़ करनी पड़ी है । इन सबको झेलने के कारण अपने कथा साहित्य में — उपन्यास और कहानियों में — वे जीवन के इस आयाम का यथार्थतः वर्णन कर सके हैं । इसका अर्थ यह कतई नहीं कि यदि वे संपन्न होते तो उनके लेखन में यह सब नहीं आता । कोई भी लेखक अपने देश के सामान्य जीवन को सामान्यतया लेता है और जब हमारे देश में गरीबी और दरिद्रता है तो वह उसमें भी आयेगी, यह भी उतना ही निश्चित है । परंतु मुंशीजी को एक लेखक के नाते यहां यह फायदा पहुंचा है कि स्वयं उस वर्ग से ताल्लुक रखने के कारण वे उनके जीवन को अच्छी तरह से देख-समझ सके हैं । मुंशीजी कई बार स्वीकार कर चुके हैं कि वे अपने पात्र अपने आसपास के परिवेश से उठाते हैं और उनकी स्वयं की स्थिति भी उनके बहुत-से पात्रों के समान ही है, अतः उनका अधिक निकटता से दर्शन वे कर सके हैं ।

[क] लेखकीय दृष्टि :

यह तो असंदिग्धतया कहा जा सकता है कि लेखक जिन आर्थिक संकटों से गुजरता है, उनका चित्रण उसके लेखन में किसी-न-किसी तरह हुए बिना नहीं रहता । लेखक की ज़िन्दगी यदि आर्थिक अभावों में गुजरी है, तो अपने उन अपरागत प्रत्यक्ष अनुभवों के कारण जीवन, समाज, व्यक्ति इत्यादि को देखने का उसका अपना एक नजरिया बन जायेगा । वह अपने लेखन में ऐसी घटनाओं को समुचित स्थान देगा ।

अपनी इस दृष्टि के कारण प्रेमचन्द हमेशा गरीबों के पक्षधर रहे हैं । महाभारत में बभ्रुवाहन की कथा आती है । बभ्रुवाहन युद्ध में हिस्सा लेना चाहता है । बभ्रुवाहन माँ से पूछता है कि उसे किसकी ओर से युद्ध करना चाहिए । उसकी माँ यह सोचकर कि पांडवों की संख्या कम है, अतः उनकी हार निश्चित है, कहती है कि बेटा ! तुम हारने-वालों की ओर से लड़ना । और आगे कथा में यह बताया गया है कि जब कौरव-पक्ष हारने लगता है, तब उनकी ओर से लड़कर बभ्रुवाहन ने पांडव-सेना में काफी तबाही मचायी थी । यहां हमारा अभिप्राय केवल इतना ही है कि लेखक या कवि का धर्म भी इसी बभ्रुवाहन के जैसा है, वह हमेशा पराजित मानवता का पक्ष लेता है ।

पराजित मानवता के पक्षधर होने के कारण वे हमेशा सामंतवाद एवं पूंजीवाद के विरोधी रहे हैं । फलतः अदालत को, पुलिस को वे हमेशा काले से काले रंग में चित्रित करते हैं । "गोदान" में होरी का भाई हीरा जब गाय को विष देकर मार डालता है, तब अपने भाई हीरा को पुलिस केस से बचाने के लिए होरी महाजन से कर्ज लेकर घूस देता है । इस घूस में पुलिस के दारोगा तथा पटवारी दोनों का हिस्सा है । यह कैसा न्याय ? गाय जाती है और ऊपर से घूस देनी पड़ती है । इस प्रसंग पर धनिया का जो आक्रोश है, वह बिलकुल सही है —

जब होरी रुपयों का बंदोबस्त करके दारोगा को देने के लिए लाता है, तब धनिया उस पर झपट पड़ती है और नागिन की तरह फुफकार कहती है — "ऐसी बड़ी है तेरी इज्जत, जिसके घर में चूहे लोटें वह भी इज्जतवाला है । दारोगा तलाशी ही तो लेगा । ले ले जहां चाहे तलाशी । एक तो सौ रुपये की गाय गयी, उस पर यह पलेथन । वाह री तेरी इज्जत । "[2]

उसी प्रकार "गबन" उपन्यास में जब पुलिस को मालूम हो जाता है कि रमानाथ पर गबन का कोई आरोप नहीं है, फिर भी उसकी अज्ञानता का लाभ उठाते हुए वह रमानाथ को फांसती है ।

"रंगभूमि" उपन्यास में ताहिरअली अपने जिस भाई को खून का पानी करके पढ़ाता है, उसे पुलिस में दारोगा बनाता है, वह माहिर-अली उसे धोखा दे जाता है। माहिरअली का बाप भी दारोगा और घूसखोर था। जब पांडेपुर की बस्ती पर म्युनिसिपालिटी कब्जा करती है तब तखमीना का अफसर भी गरीब देहातियों के साथ बेईमानी करता है। अपने मकान और जमीन का तखमीना लेने के लिए भी घूस देनी पड़ती है। जो व्यक्ति घूस देता है, उसे छोटे मकान की भी अच्छी रकम मिलती है और जो नहीं देता उसके अच्छे मकान को भी कौड़ियों के मोल ले लिया जाता है।[3] इस प्रकार मुंशीजी का साहित्य उदीयमान भारतीय राष्ट्रीयता और गरीब-दलितों का साहित्य हो जाता है।[4] अमीरों के प्रति उनके मन में अपार घृणा थी। एक पत्र में उन्होंने लिखा था --

"जो व्यक्ति धन सम्पदा में विभोर और मग्न हो, उसके महान पुरुष होने की कल्पना मैं नहीं कर सकता। जैसे ही किसी आदमी को मैं धनी पाता हूँ, वैसे ही मुझ पर उसकी कला और बुद्धिमत्ता की बातों का प्रभाव काफूर हो जाता है। मुझे जान पड़ता है कि इस शख्स ने मौजूदा सामाजिक व्यवस्था को -- उस सामाजिक व्यवस्था को, जो अमीरों द्वारा गरीबों के शोषण पर अवलंबित है -- स्वीकार कर लिया है। इसी प्रकार किसी भी बड़े आदमी का नाम जो लक्ष्मी का कृपापात्र भी हो मुझे आकर्षित नहीं करता। बहुत मुमकिन है कि मेरे मन में इन भावों का कारण जीवन में मेरी असफलता ही हो। बैंक में मोटी रकम जमा देखकर शायद मैं भी वैसा ही होता, जैसे दूसरे हैं, मैं भी प्रलोभन का सामना न कर सकता, लेकिन मुझे प्रसन्नता है कि स्वभाव और किस्मत ने मेरी मदद की है और मेरा भाग्य दरिद्रों के साथ संबद्ध है। इससे मुझे आध्यात्मिक xxxxx सान्त्वना मिलती है है।"[5]

यही कारण है कि "गोदान" के रायसाहब को और जमींदारों की अपेक्षा कुछ उदार चित्रित करते हुए भी उनके चरित्र की मूलभूत रेखाओं को चित्रित करना प्रेमचन्द का वस्तुवादी कलाकार नहीं चूकता।

रायसाहब अमरपालसिंह होरी के जमींदार हैं । वे कांग्रेसी जमींदार हैं , वे न केवल एक व्यक्ति हैं , बल्कि वे अपने वर्ग के प्रतीक हैं । प्रेमचन्दजी प्रेमचन्दजी ने यहाँ बड़ी कुशलता से उन जमींदारों के चरित्र को बेपर्द किया है , जो पहले साम्राज्यवादियों के पिट्ठू थे और बाद में गांधीजी के और कांग्रेस के बढ़ते प्रभाव में कांग्रेसी हो गये हैं । "रंगभूमि" के राजा महेन्द्रसिंह तथा "गोदान" के रायसाहब ऐसे ही लोगों में से हैं — एक ही थैली के चट्टे-बट्टे । देखिए प्रेमचन्दजी रायसाहब के बारे में क्या राय देते हैं —

"पिछले सत्याग्रह संग्राम में रायसाहब ने बड़ा यश कमाया था । कौंसिल की मेंबरी छोड़कर जेल चले गये । तबसे उनके इलाके के असामियों को उनसे बड़ी श्रद्धा हो गई थी । ये नहीं कि उनके इलाके में असामियों के साथ कोई खास रियायत की जाती हो , या डांड़ और बेगार की कड़ाई कुछ कम हो , मगर यह सारी बदनामी मुख्तारों के सिर जाती थी । रायसाहब की कीर्ति पर कोई कलंक नहीं लग सकता था । " [6]

प्रेमचन्दजी ने यहाँ पर कांग्रेसी जमींदारों पर अच्छी चिकोटी काटी है — " रायसाहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेलजोल बनाये रखते थे । उनकी नज़रें और डालियां और कर्मचारियों की दस्तूरियाँ जैसी की तैसी चली आती थीं । " [7] अभिप्राय यह कि भेड़िये यहाँ भेड़ बनकर आये हैं । रायसाहब लोगों के देखते बनने जेल भी जाते हैं और दूसरी ओर अंग्रेजों के कृपाकांक्षी होने के लिए अफसरों की चापलूसी भी करते हैं । प्रोफेसर मेहता रायसाहब की सही रग [नब्ज] पकड़ते हुए कहते हैं — " मानता हूँ , आपका आपके असामियों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव है , मगर प्रश्न यह है कि उसमें स्वार्थ है या नहीं , इसका एक कारण क्या यह नहीं है कि मद्धिम आंच में भोजन स्वादिष्ट पकता है । गुड़ से मारने वाला जहर से मारने वाले की अपेक्षा कहीं सफल हो सकता है । मैं तो केवल इतना जानता हूं कि हम या तो साम्यवादी हैं या नहीं हैं । हैं तो उसका व्यवहार करें , नहीं तो बकना छोड़ दें ।" [8]

प्रेमचन्द ने उपर्युक्त [पूर्वउल्लिखित] पत्र में "प्रभुता पाई काहू होइ मद नाहिं" का संकेत मिलता है । अतः वे धन की प्रभुता से दूर ही रहे हैं । जमींदार की परीक्षा लेने की बात उन्हें उचित नहीं लगी है । परंतु अपने लेखन में वे कई अनेक पात्रों व घटनाओं द्वारा परीक्षित कर चुके हैं । "नशा" कहानी का नायक बीरू यों तो गरीब घर का है और हमेशा समानता इत्यादि की बातें करता रहता है । उसका दोस्त ईश्वरी एक बहुत बड़े जमींदार का बेटा है । एक बार छुट्टियों में बीरू ईश्वरी के यहाँ कुछ दिन रह आता है । आते समय रास्ते में रेल में एक देहाती का सामान ज़रा बीरू को छू जाता है तो वह उस देहाती को दो-तीन तमाचे जड़ देता है । इस पर गाड़ी में तूफान खड़ा हो जाता है । चारों ओर से बौछारें पड़ने लगती हैं — "अगर इतने नाजुक मिज़ाज हो, तो अव्वल दर्जे में क्यों नहीं बैठे ?" ... कोई बड़ा आदमी होगा, तो अपने घर का होगा । मुझे इस तरह मारते तो दिखा देता ।" ... "क्या कसूर किया था बेचारे ने । गाड़ी में साँस लेने की जगह नहीं, खिड़की पर जरा साँस लेने खड़ा हो गया, तो इस पर इतना क्रोध । अमीर होकर क्या आदमी अपनी इन्सानियत बिलकुल खो देता है ?" .... एक ग्रामीण बोला — दफ्तरन मां घुस पावत नहीं, उस पै इत्ता मिजाज ।" ... ईश्वरी ने अंग्रेजी में कहा — वोट एन इडियट यु आर, बीर । ... और मेरा नशा अब कुछ-कुछ उतरता हुआ मालूम होता था ।" [9]

"कायाकल्प" उपन्यास का चक्रधर भी अपने को एक आदर्शवादी जनता का सेवक मानता है । परंतु जब वह राजा साहब का दामाद बन जाता है और उसकी मोटर बिगड़ जाती है तब एक देहाती गरीब आदमी के बेगार की मना करने पर वह उसे इतना मारता है कि अंततोगत्वा उस मार से बीमार होकर कुछ दिनों के बाद वह दम तोड़ देता है । इस प्रकार अपने समग्र लेखन में लेखक ने स्वयं को गरीबों का पक्षधर तथा उनके शोषक जमींदारों, महाजनों, पूंजीपतियों का विरोधी के रूप में चित्रित किया है । शोषक और शोषित में प्रेमचन्द सदैव शोषितों के पक्ष में रहे हैं । उनकी यह दृष्टि ही सिद्ध करती है कि उनका लेखन आर्थिक-संघर्ष

का एक परिणाम है । यही एक परिणाम है ऐसा नहीं , परंतु यह एक मुख्य परिणाम है , ऐसा हमारा मानना है ।

(ख) दहेज-समस्या :

प्रेमचन्दजी ने अपने उपन्यास और कहानियों में जिस वस्तु को उठाया है , उससे यह अभिप्रायित प्रमाणित हो जाता है कि स्वयं आर्थिक-संकटों[9] से गुजरने के कारण उन्होंने उन मुद्दों विशेष रूप से उठाया है जिनका सम्बन्ध हमारी अर्थ-व्यवस्था से है । "सेवासदन" और "निर्मला" में लेखक ने अनमेल-ब्याह और दहेजप्रथा की समस्याओं को उठाया है । परंतु यदि विचार किया जाय तो इन समस्याओं के मूल भी आपको मध्यवित्त-वर्ग के अन्तर्गत मिलेंगे । अनमेल-ब्याह का मूल कारण तो दहेज-प्रथा है । दहेज देने की असामर्थ्य के कारण ही सुंदर, सुशील कन्याओं को गजाधर या तोताराम जैसे अधेड़ों के गले मढ़ दी जाती हैं । निम्न-वर्ग में यह समस्या नहीं है , क्योंकि वहाँ स्त्री उत्पादन के कार्य में पुरुष के समकक्ष है । वहाँ वह भी मेहनत मजदूरी करती है , कमाती है । बल्कि कई बार तो ऐसा देखा गया है कि वही कमाती है और अपने पति तथा बाल-बच्चों को भी पालती है । मंजुल भगत के उपन्यास "अनारो" की अनारो को यहाँ उदाहरण-स्वरूप लिया जा सकता है ।[10] प्रेमचन्दजी की कहानी "कफ़न" में भी यही बताया गया है कि माधव की बहू दिन-रात मेहनत करके इन दो बेगैरत पुरुषों (माधव और घीसू) के पेट को भरती है ।[11] अभिप्राय यह कि यह समस्या मध्यवित्त वर्ग के लोगों की समस्या है और जब हम यह कहते हैं कि प्रेमचन्दजी ने आजीवन आर्थिक-संघर्षों से जूझा है , तो वहाँ भी बात मध्यवित्त-वर्ग संदर्भ में ही कही गई है । निम्नवर्ग के लोगों से तो प्रेमचन्दजी की आर्थिक स्थिति अच्छी ही रही होगी । "निर्मला" उपन्यास में उसके पिता उदयभानुलाल निर्मला की सगाई अच्छे खाते-पीते संपन्न परिवार में करते हैं , और गोकि वे लोग दहेज की कोई बात नहीं चलाते , परंतु उन्हें उदयभानुलाल से बिना कहे भी अच्छा दहेज मिलने की आशा है ।

अतः जब पुरानी अदावत में उदयभानुलाल की हत्या मतई नामक एक बद-माश कर डालता है, तब निर्मला की ससुरालवाले वह रिश्ता तोड़ डालते हैं। लड़के के पिता बाबू भालचन्द्र सिन्हा महा चालाक आदमी हैं। वह तो नहीं कहते कि अब दहेज की उम्मीद न होने से वह रिश्ता तोड़ते हैं, कहते हैं कि बाबू उदयभानु की याद उन्हें बेचैन करेगी यदि उनकी कन्या घर में आ गई -- "मेरे शुभ संस्कार या दोष, कि जिससे एक बार मेरी घनिष्ठता हो गई, फिर उसकी याद चित्त से नहीं उतरती। अभी तो बेर बराबर ही है कि उनकी सूरत आँखों के सामने नाचती रहती है; लेकिन वह कन्या घर में आगई, तब मेरा ज़िन्दा रहना कठिन हो जाएगा। सच मानिये, रोते-रोते मेरी आँखें फूट जाएंगी। जानता हूं, रोना-धोना व्यर्थ है। जो मर गया, वह लौटकर नहीं आ सकता। सब्र करने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है। लेकिन दिल से मजबूर हूं। उस अनाथ बालिका को देखकर मेरा कलेजा फट जाएगा।"[12]

एक खूबसूरत बहाना तलाशकर बाबू भालचन्द्र रिश्ते को तोड़ डालते हैं। पहले तो उनकी पत्नी रंगीलीबाई भी रिश्ता तोड़ने के पक्ष में थी, परंतु निर्मला की मां कल्याणी की हृदयद्रावक चिट्ठी पढ़कर वह पसीज जाती है और तब भालचन्द्रजी मामला अपने बेटे पर छोड़ देना चाहते हैं, क्योंकि उन्हें भलीभांति मालूम है कि वह उनका बेटा है। दहेज न मिलने की सूरत में वह भी मना कर देता है, क्योंकि वह तो चाहता है कि उसका रिश्ता वहां हो जहां से उसे ढेर सारे रुपये मिलें।[13] परिणाम साफ है। रिश्ता टूट जाता है। अर्थाभाव में, क्योंकि अब कमानेवाला भी कोई नहीं है, निर्मला तोताराम के साथ ब्याह दी जाती है, जो उम्र में प्रायः उसके पिताकी उम्र के हैं। इस विवाह का कितना करुण अंत होता है, वह तो सबको विदित है। निर्मला को जिन यंत्रणाओं से गुजरना पड़ता है उसका अंदाजा तो मरते समय वह अपनी बच्ची को ननद रुक्मिणी को सौंपते हुए जो शब्द कहती है उससे लग जाता है --

" दीदीजी, अब मुझे किसी वैद्य की दवा का फायदा न

करेगी । आप मेरी चिन्ता न करें । बच्ची को आपकी गोद में छोड़ जाती हूं । अगर जीती-जागती रहे, तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजिएगा । मैं तो इसके लिए अपने जीवन में कुछ कर न सकी, केवल जन्म देने-भर की अपराधिनी हूं । चाहे क्वांरी रखिएगा, चाहे विष देकर मार डालिएगा, पर कुपात्र के गले न मढ़िएगा, इतनी ही आपसे विनय है । " [14]

अभिप्राय यह कि निर्मला के जीवन की यह जो त्रासदी है, उसके पीछे आर्थिक कारण ही जिम्मेदार हैं । ठीक इसी तरह "सेवासदन" की सुमन के अधःपतन के पीछे भी आर्थिक कारण हैं । दारोगा कृष्णचन्द्र सुमन के पिता हैं । सुमन सुंदर है, सुशील है, बुद्धिमती है । उसके पिता सोचते हैं कि ऐसी कन्या का ब्याह तो बिना दहेज के हो जायेगा । अच्छा, दहेज की उन्हें कोई समस्या न होती, यदि और दारोगा जैसे होते हैं वैसे ही वे होते । अपनी पच्चीस वर्ष की नौकरी में उन्होंने कभी रिश्वत नहीं ली थी, जिसके कारण उदार व सज्जन होते हुए भी अपने विभाग तथा मातहतों में वे अप्रिय थे । वे कहते हैं — " हम इनकी भलमनसाहत को लेकर क्या करें — चाटें ? हमें घुड़की, डांट-डपट, सख्ती सब स्वीकार है, केवल हमारा पेट भरना चाहिए । रूखी रोटियां चांदी के थाल में परोसी जायं, तो भी वे पूरियां न हो जाएंगी । " [15]

पर जब बेटी के ब्याह के लिए निकलते हैं, तब उन्हें आटे-दाल का भाव मालूम होता है । यह समाज नहीं, बाज़ार है । वे एक-से-एक नमूने मिलते हैं । एक जनाब फरमाते हैं — " दारोगाजी, मैंने लड़के को पाला है, सहस्त्रों रुपये उसकी पढ़ाई में खर्च किए हैं । आपकी लड़की को उससे उतना ही लाभ होगा, जितना मेरे लड़के को । तो आप ही न्याय कीजिए कि यह सारा भार मैं अकेला कैसे उठा सकता हूं । " [16]

मतलब यह कि सुमन के विवाह के लिए कृष्णचन्द्र दरोगा को महन्त रामदास से रिश्वत लेनी पड़ती है और अनभ्यस्त होने के कारण वे पकड़े जाते हैं । उन्हें पांच वर्ष की कैद होती है । पूरा परिवार मटियामेट हो जाता है । सुमन की मां गंगाजली रुपयों के अभाव में सुमन की शादी गजाधर जैसे

कुंठाग्रस्त से होती है, जो अन्ततः सुमन के अधःपतन में परिणत होती है।

उसी प्रकार "अलग्योझा", "ठाकुर का कुआँ", "पूस की रात", "लॉटरी का सम्मान", "बेटों का धन", "चोरी", "बहिष्कार", "पिसनहारी का कुआँ", "सद्गति", "सवासेर गेहूँ", "मुक्ति-भोज", "सभ्यता का रहस्य" आदि अनेकानेक कहानियाँ हैं जिनमें लेखक ने आर्थिक समस्या को उकेरा है। "कफ़न" कहानी के माधव और घीसू की अमानुषिता के पीछे उनका आलस्य और काहिली तो है ही, परंतु पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आती गरीबी भी है। लेखक ने उसका विश्लेषण करते हुए बताया है —

" जिस समाज में रात-दिन मेहनत करनेवालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी, और किसानों के मुकाबले में वे लोग; जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा संपन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी।" 17

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि स्वयं भुक्तभोगी रहने के कारण प्रेमचन्दजी ने अपने कथा-साहित्य में आर्थिक सरोकारों को वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषित किया है और लगभग यही निष्कर्ष निकलता है कि इसके पीछे हमारी समाज-व्यवस्था ही जिम्मेदार है।

(ग) लेखकीय संवेदना :

लेखकीय-संवेदना के द्वारा भी उनकी मानसिकता को जाना जा सकता है। प्रेमचन्दजी का जीवन आर्थिक-संघर्षों से गुजरा है, अतः इसे स्वाभाविक ही माना जायेगा कि उनकी संवेदना उन-उन पात्रों से भी जो इस प्रकार की संघर्ष-यात्रा से गुजरते हैं। यहाँ कोई [illegible]xx टी. एस. इलियट के निरपेक्षता सिद्धांत की बात कर सकता है कि लेखक को तो अपनी दृष्टि में तटस्थ रहना चाहिए और उसकी संवेदना सभी पात्रों के साथ होनी चाहिए। वस्तुतः ऐसा उस सिद्धांत को गलत-

भाँति न समझने के कारण होता है । निरपेक्षता का अर्थ यह होता है कि लेखक तटस्थ-दृष्टि से , न्याय-दृष्टि से अपने पात्रों का सृजन करे और उसमें अपनी वैयक्तिक पसंद-नापसंद , वैयक्तिक द्वेष-भाव इत्यादि को स्थान न देकर जो जैसा है वैसा सृष्ट करें । परंतु ऐसा करने में उसकी संवेदना अच्छे और भले पात्रों के प्रति रह सकती है । स्वयं स्रष्टा भी पवित्र आत्माओं को पसंद करता है । परंतु यहां गौरतलब बात यह होगी कि इस संवेदना के कारण लेखक को उस पात्र से कोई रियायत नहीं होगी । उसमें भी यदि कोई कमजोरी होगी , तो वह उसे भी चित्रित करेगा , जैसा कि लेखक ने "गोदान" के होरी तथा "रंगभूमि" के सूरदास के साथ किया है । यह बिलकुल स्पष्ट है कि इन दो पात्रों को लेखक की संवेदना प्राप्त है , परंतु इसका अर्थ यह कतई नहीं कि इन पात्रों की सब अच्छी ही अच्छी बातों को लेखक ने लिया है ।

जो होरी पूरे उपन्यास में धर्म , नीति , मर्यादा की बात करता है वह पांच रूपयों के लिए अपने भाइयों को धोखा देना चाहता है , यह भी उपन्यास में दर्शाया गया है ।[18] उसी प्रकार गाय के लिए वह भोला को भी उसका विवाह करा देने का वायदा करता है , हालांकि वह जानता है कि यह मुश्किल काम है ।[19] उसी प्रकार बहुत बाद में जब भोला अपने प्रयत्नों से किसी जवान औरत से शादी करवाता है , तब होरी भोला की औरत की खुशामद करता है , यह जानते हुए भी कि वह औरत भोला के बुढ़ापे का फायदा उठाते हुए नोखेराम से फंसी हुई है क्योंकि अपनी बेटी सोना की शादी के लिए वह होरी को दो सौ रूपये देने के लिए तैयार हो जाती है ।[20]

"रंगभूमि" का सूरदास भी एक भला और खरा इन्सान है । परंतु जब मुहल्लेवाले उसके साथ बुरा व्यवहार करते हैं , तब एक बार तो वह भी अपनी वह जमीन बेचने के लिए तैयार हो जाता है और उस उद्देश्य से जानसेवक के पास भी जाता है , जो जमीन उसने सार्वजनिक उपयोग के लिए छोड़ रखी थी ।[21] उसी तरह भैरों की पत्नी सुभागी

सुभागी जब उसके आश्रय में रहने आती है , तब उसके अन्तर्मन में जो द्वन्द्व चलता है , वह विचार्य है — " मैं कितना अभागा हूं , काश यह मेरी स्त्री होती , तो कितने आनंद से जीवन व्यतीत करता । अब तो भैरों ने उसे घर से निकाल ही दिया , मैं रख लूं तो इसमें कौन-सी बुराई है । इससे कहूं कैसे , न जाने दिल में क्या सोचे ? मैं अंधा हूं तो क्या आदमी नहीं हूं । बुरा तो न मानेगी ? मुझसे प्रेम न होता तो मेरी इतनी सेवा क्यों करती ? " 21

अभिप्राय यह कि प्रेमचन्दजी के कथा-साहित्य में कुछेक पात्रों के प्रति सहानुभूति होने के बावजूद लेखक ने बड़ी तटस्थता से उनका चित्रण किया है । परंतु इतना निश्चित है कि कुछ पात्रों के प्रति लेखक की सहानुभूति है और उनसे ही लेखक की रुझान का पता चलता है ।

"सेवासदन" की गंगाजली [सुमन की माँ] , "निर्मला" की कल्याणी [निर्मला की माँ] , निर्मला , रुक्मिणी ; "रंगभूमि" के सूरदास , सुभागी , ताहिरअली , कुलसुम ; "गबन" की जोहरा ; "कर्मभूमि" की सकीना और मुन्नी ; "गोदान" के होरी , धनिया , गोबर आदि पात्र तो "पूस की रात" का हल्कू , "ईदगाह" की अमीना , "अलग्योझा" का रग्घू , पन्ना , मुलिया ; "सवा सेर गेहूं" का शंकर किसान , "कफ़न" की बुधिया , "सद्गति" के दुखी और झुरिया , "बहिष्कार" के गोविन्दी, कालिन्दी और ज्ञानचन्द्र ; "बेटी का धन" सुक्खू चौधरी , "बदला" का घसीटू , "पंच परमेश्वर" की बूढ़ी खाला आदि ऐसे पात्र हैं जो आर्थिक संघर्षों से जूझते हैं और उन्हें लेखक की संवेदना भी प्राप्त हुई है । प्रेमचन्दजी को कला का सौन्दर्य इन जीवन-संग्राम के योद्धाओं में दिखता है । उनकी सौन्दर्य-दृष्टि ह्रासोन्मुखि ह्रासोन्मुखी सामंतवादी सौन्दर्य-दृष्टि नहीं है । "साहित्य का उद्देश्य" नामक निबंध में वे कहते हैं —

"हमें सुंदरता की कसौटी बदलनी होगी । अभी तक यह कसौटी अमीरी और विलासिता के ढंग की थी । हमारा कलाकार अमीरों का पल्ला पकड़े रहना चाहता था , उन्हीं की क़द्रदानी पर

पर उसका अस्तित्व अवलंबित था और उन्हीं के सुख-दुःख, आशा-निराशा, प्रतियोगिता और प्रतिद्वन्द्विता की व्याख्या कला का उद्देश्य था। उसकी निगाह अंतःपुर और बंगलों की ओर उठती थी। झोंपड़े और खंडहर उसके ध्यान के अधिकारी नहीं थे। उन्हें वह मनुष्यता की परिधि के बाहर समझता था। कभी इनकी चर्चा करता भी था तो उनका मजाक उड़ाने के लिए। ग्रामवासी की देहाती वेशभूषा और तौर-तरीके पर हंसने के लिए, उसका शीन-काफ़ दुरुस्त न होना, या मुहाविरों का गलत उपयोग उसके व्यंग्यविद्रूप की स्थायी सामग्री थी। वह भी मनुष्य है, उसके भी हृदय है और उसमें भी आकांक्षाएं हैं — यह कला की कल्पना के बाहर की बात थी। .... उसकी दृष्टि अभी इतनी व्यापक नहीं कि जीवन-संग्राम में सौन्दर्य का परमोत्कर्ष देखे। उपवास और नग्नता में सौन्दर्य का अस्तित्व संभव है, इसे कदाचित् वह स्वीकार नहीं करता। उसके लिए सौन्दर्य सुंदर स्त्री है — उस बच्चोंवाली गरीब रूप-रहित स्त्री में नहीं, जो बच्चे को खेत की मेंड पर सुलाए पसीना बहा रही है। ... यह संकीर्ण दृष्टि का दोष है।" [22] इस संदर्भ में मेरे निर्देशक महोदय की एक चमत्कारिका है, जो इस समय मेरी स्मृति में कौंध रही हैं —

"बच्चों की परीक्षा के दिनों में
कथा या भजन में जानेवाली महिला की अपेक्षा
मैं उस स्त्री को
अधिक सती-साध्वी या देवी समझता हूं
जो उसकी फीस के लिए अपने शरीर का सौदा करती है।"[23]

प्रेमचन्दजी के साहित्य में ऐसे जीवन-संग्राम में जूझने वाले पात्रों से लेखक की संवेदना जुड़ गई है। "रंगभूमि" का अंग्रेज अफसर राजा महेन्द्रप्रतापसिंह से कहता है — " हमें आप जैसे मनुष्यों से भय नहीं है, भय ऐसे मनुष्यों से है जो जनता के हृदय पर शासन करते हैं।" [24]

"रंगभूमि" का सूरदास प्रेमचन्द के उन पात्रों में है, जो जिन्दगी को एक लड़ाई और साथ ही खेल भी समझते हैं। हार भी गये तो क्या? जीत भी गये तो क्या? खिलाड़ी का एक मात्र खेल×है× कर्तव्य है खेलना। कहा गया है — "जिन्दगी जीत है, विश्वास है, तैयारी है; मौत विश्राम है, लड़ाई की लाचारी है।" सूरदास के अंतिम समय का यह कथन ध्यान देने योग्य है —

" तुम जीते मैं हारा। यह बाजी तुम्हारे हाथ रही, मुझसे खेलते नहीं बना। तुम मंजे हुए खिलाड़ी हो, दम नहीं उखड़ता, खिलाड़ियों को मिलाकर खेलते हो और तुम्हारा उत्साह भी खूब है। हमारा दम उखड़ जाता है, हाँफने लगते हैं और खिलाड़ियों को मिलाकर नहीं खेलते, आपस में झगड़ते हैं, गाली-गलौज, मार-पीट करते हैं, कोई किसी की नहीं मानता। तुम खेलने में निपुण हो, हम अनाड़ी हैं। बस, इतना ही फर्क है। तालियाँ क्यों बजाते हो, यह तो जीतने वालों का धरम नहीं? तुम्हारा धरम तो है हमारी पीठ ठोकना। हम हारे तो क्या, मैदान से भागे तो नहीं, रोये तो नहीं, धाँधली तो नहीं की। फिर खेलेंगे, जरा दम लेने दो, हार-हार कर तुम्ही से खेलना सीखेंगे और एक-न-एक दिन हमारी जीत होगी, जरूर होगी।"[25]

इसी प्रकार "गोदान" का होरी, धनिया और गोबर जिजीविषा से भरे हुए हैं। होरी किसान से मजदूर हो जाता है। सुतली बनाता है, गिट्टियाँ ढोता है, पर कामचोरी नहीं करता। अंत तक जिन्दगी से जूझता रहता है। डा. मन्मथनाथ गुप्त होरी के संबंध में लिखते हैं —

"होरी सामंतवाद के अधीन शोषित है। वह कोई दूध का धुला व्यक्ति नहीं है, किंतु फिर भी वह अपने शोषकों से कहीं अच्छा है। .... फिर अगर वह भाई को धोखा देने के लिए तैयार हो जाता है, तो उसीको गाय मारकर जब उसका भाई फरार हो जाता है, और पुलिस भाई के घर की तलाशी लेने आती है, तो वह उधार

रुपए घूस देकर भाई की मरजाद को बचाने के लिए तैयार हो जाता है । इसके अतिरिक्त वह वर्षों तक अपने भाई की स्त्री का पालन करता है । होरी और कई मौकों पर छोटा-मोटा झूठ बोलता है , धोखा देता है , धोखा देना चाहता है , ठकुरसुहाती कहता है , किन्तु उसने जो कुछ किया हो , उसे ऐसा कहने की नौबत कभी नहीं आई , जैसे खन्ना कहते हैं —" आप नहीं जानते मिस्टर मेहता , मैंने अपने सिद्धान्तों की कितनी हत्या की है , कितनी रिश्वतें दी हैं , कितनी रिश्वतें ली हैं , किसानों की ऊख तौलने के लिए कैसे आदमी रखे , कैसे नकली बाँट रखे । " होरी आदर्श व्यक्ति नहीं था , किन्तु वह अपने जमींदारों से , महाजनों तथा पूँजीपतियों से कहीं अच्छा था । प्रश्न व्यावहारिक है , कागजी या स्वाप्निक नहीं । इनमें से किसको वरण किया जाय ? होरी को या उसके मालिकों को , मालिकों को इसलिए कि उसके कई मालिक हैं । " 26

कहने का तात्पर्य यह कि प्रेमचन्दजी की मूलभूत संवेदना ऐसे लोगों के प्रति बड़ी गहरी रही है जिन्होंने जीवन के झंझावातों का सामना किया हो । ऐसे लोगों में कुछ मानवीय कमजोरियाँ भी रह सकती हैं , और रही हैं , परंतु समग्रतया विचार करने पर ऐसे लोग सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था में बैठे हुए लोगों से मूठ भर ऊपर उठे हुए दिखते हैं । मानवीय मूल्यों की दृष्टि से उनका सिर थोड़ा ऊपर उठा हुआ दृष्टिगत होगा । तभी तो अज्ञेयजी ने प्रेमचन्दजी के संदर्भ में कहा था —

" साहित्यकार की संवेदना को , मानवीय चेतना को , हमने अधिक विकसित या प्रसारित नहीं किया है । ... प्रेमचन्द को हम पीछे छोड़ आये , यह दावा सार्थक उसी दिन होगा जिस दिन उससे बड़ी मानवीय संवेदना हमारे बीच प्रकट हो । उसके बाद ही हम यह कह सकेंगे कि प्रेमचन्द का महत्व ऐतिहासिक महत्व है । तब तक वह हमारे बीच में हैं, [illegible] पुराने पड़कर भी समर्थ हैं , साहित्य - परम्परा में गुरु स्थानीय हैं और उनसे हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए । " 27

(ख) धन का अभाव :

प्रेमचन्दजी चाहते तो काफी सारा धन कमा सकते थे, यह एकाधिक बार कहा गया है, परन्तु धन के अति-संग्रह को वह सभी बुराइयों की जड़ के रूप में देखते थे, अतः उस मामले में उन्होंने सदैव निर्लिप्तता से काम लिया। वह कबीर के इस सिद्धान्त को मानते रहे कि "साईं इतना दीजिए, जामें कुटुम समाय। मैं भी भूखा ना रहूं, साधु भूखा न जाय।" इस प्रकार अपने परिवार के पालन-पोषण के लिए पर्याप्त धन तो लेखन या नौकरी से कमा लेते थे, परंतु जन-भलाई के लिए उन्होंने जो [illegible] पाल रखे थे उसके कारण वह हमेशा आर्थिक मुश्किल से तंगी में रहे। धन का अभाव उनकी एक हमेशा की समस्या थी, अतः उनके कथा-साहित्य में उसके कई उदाहरण मिलते हैं।

(1) बच्चों की असामय मृत्यु :

धन के अभाव के कारण परिवार में कई बार बच्चों की असमय मृत्यु हो जाती है। स्वयं प्रेमचन्दजी के दूसरे पुत्र मन्नू की मृत्यु एक साल की अवस्था में हो गई थी। प्रेमचन्दजी ने इस संदर्भ में एक दोस्त को लिखा था --- "बाईस दिन बाद तक इस ग़म से नजात नहीं हुई। सब्र तो हो गया, मगर याद बाकी है, और शायद ताज़ीस्त रहेगी। इसे अपने एमाल का नतीजा समझता हूं, और क्या ?"[28]

अतः उनके कथा-साहित्य में कई ऐसे प्रसंग आते हैं जहां धनाभाव में ठीक से इलाज न हो पाने के कारण बच्चे की मृत्यु होती है। "गोदान" उपन्यास के प्रारंभ में ही होरी अपन करुण कथनी का बयान इस प्रकार करता है --

"चाहे जितनी ही कतरब्योंत करो, कितना पेट-तन काटो, चाहे एक-एक कौड़ी को दांत से पकड़ो, मगर लगान बेबाक होना मुश्किल है। ... उसकी छः संतानों में अब केवल तीन ज़िन्दा हैं, एक लड़का गोबर कोई सोलह साल का, और दो लड़कियां सोना और रूपा बारह और आठ साल की। तीन लड़के बचपन में ही मर गये। उसका मन आज भी कहता था, अगर उनकी दवादारू होती तो वे बच जाते, पर वह

{होरी की स्त्री धनिया} एक धेले की भी दवा नहीं कर सकी थी । * 29

"मंत्र" कहानी के बूढ़े के छः लड़के असमय ही मर गये थे, और सातवें को वह डाक्टर चड्ढा के पास लाया था, पर डाक्टर उस लड़के को देखने तक से इन्कार कर देता है, क्योंकि उस समय वह गोल्फ खेलने जा रहे थे । बूढ़ा अपनी पगड़ी उतारकर गिड़गिड़ाकर कहता है -- "हुजूर, एक निगाह देख लें । बस, एक निगाह । लड़का हाथ से चला जायगा हुजूर, सात लड़कों में यही एक बच रहा है, हुजूर । हम दोनों आदमी रो-रोकर मर जायेंगे, सरकार । आपकी बढ़ती होय दीनबंधु । * 30

पर पत्थर-दिल दीनबंधु को न पसीजना था, न पसीजे । वह लड़का भी जाता न रहा । यहां बूढ़े के अन्य छः लड़के मर गये, ऐसा उल्लेख है । वस्तुतः गांवों में गरीबी के कारण ठीकठाक इलाज नहीं होता और ऐसे कई बच्चे मौत के घाट पहुंच जाते हैं । यहां बूढ़े के स्थान पर [illegible] शहर का कोई धनी-मानी प्रतिष्ठित व्यक्ति होता, तो भी क्या डा. चड्ढा का यही व्यवहार होता ? यह एक [illegible] विचारणीय प्रश्न है ।

"गोदान" उपन्यास का गोबर जब दुबारा शहर जाता है तो उसे ज्ञात होता है कि जिस अड्डे पर खोंचा लगाता था, वहां दूसरे ने अपना खोंचा लगाना शुरू कर दिया है । पुराने ग्राहक भी उसे भूल गए हैं । अतः शक्कर मिल में मजदूरी का काम वह करने लगता है । उन्हीं दिनों में उसका लड़का भी मर जाता है । यहां भी बच्चे की असमय मृत्यु के पीछे धनाभाव के कारण ठीकठाक इलाज न होना ही है ।

"[illegible]" कहानी में बच्चे की असमय मृत्यु के पीछे गरीबी और धनाभाव कारणभूत है । "कफन" कहानी में माधव की स्त्री बुधिया प्रसव-पीड़ा के दरमियान मर जाती है । यहां भी दवादारू और इलाज का अभाव ही मुख्य कारण है ।

"अमावास्या की रात्रि" कहानी में पंडित देवदत्त की पत्नी गिरिजा अत्यंत ही बीमार थी , परंतु उसका ठीकठाक इलाज कराना पंडितजी के बस की बात नहीं थी । अर्थभाव के कारण उसका समुचित इलाज कराने की सामर्थ्य उनमें नहीं थी । दिवाली के दिन उनकी पत्नी का बुरा हाल था । ऐसे में एक युवक आकर उनका पुराना ऋण चुकता कर जाता है , क्योंकि गया जाकर वह अपने पूर्वजों का श्राद्ध करना चाहता था और जब तक किसीके सिर पर ऋण हो तब तक उनकी मुक्ति नहीं हो सकती । अतः वह युवक सूद-दर-सूद का हिसाब लगाकर पचहत्तर हजार रुपये ××× लौटाने आया था । देवदत्त खुश होकर पत्नी के पास जाते हैं , परंतु तब तक में उसके प्राण पखेरू तो उड़ चुके थे । उसी आवेश में वे उन रुपयों को लेकर वैद्यजी के यहाँ जाकर उन्हें कहते हैं —

"बैद्यजी ये पचहत्तर हजार के नोट हैं । यह आपका पुरस्कार और आपकी फीस है । आप चलकर गिरिजा को देख लीजिए , और ऐसा कुछ कीजिए कि वह केवल एक बार आँख खोल दे । यह उसकी एक छविपर न्योछावर है — केवल एक दृष्टि पर । आपको रुपये मनुष्य की जान से प्यारे हैं । वे आपके समक्ष हैं । मुझे गिरिजा की एक चितवन इन रुपयों से कई गुनी प्यारी है ।" 31

स्वयं प्रेमचन्दजी की मृत्यु भी ठीक से इलाज न हो पाने के कारण हुई थी । "गोदान" के होरी की मृत्यु और मुंशीजी की मृत्यु में काफी साम्य है । धनाभाव के कारण अत्यधिक श्रम और अपने स्वास्थ्य की चिंता न करना दोनों में××× की मृत्यु में कारणभूत है ।

/4.8. धनाभाव के कारण सामाजिक समस्याएँ :

कुछ सामाजिक समस्याओं का प्रस्फुटन आर्थिक कारणों से होता है । जैसे "सेवासदन" , "निर्मला" आदि उपन्यासों में अनमेल ब्याह की जो समस्या है , उसके मूल में धन का अभाव है । गंगाजली और कल्याणी (क्रमशः सुमन और निर्मला की माताएँ) के पास यदि पर्याप्त धन होता

तो वे अपनी कन्याओं को थोड़े कुएं में धकेलतीं ? उसी प्रकार "वेश्या-समस्या" सामाजिक समस्या है, परंतु उसका भी उत्स तो धनाभाव ही है। धन की इफरात होने पर भी कोई अपने मौज-शौक के लिए वेश्या बने ऐसा कम देखने में आता है। "सेवासदन" की सुमन तथा "गबन" की जोहरा आर्थिक कारणों से भी वेश्या-वृत्ति की ओर जाती हैं। यदि सुमन या जोहरा ने इतनी शिक्षा पायी होती कि वह आर्थिक दृष्टया आत्म-निर्भर रह सकें तो उस जघन्य पेशे की ओर वे कभी न गयी होतीं।

"वरदान" उपन्यास में वृजरानी [विरजन] और प्रताप परस्पर एक-दूसरे को चाहते हैं और स्वभाव भी वे एक-दूसरे के योग्य हैं। परंतु आर्थिक कारणों से उनका मेल नहीं हो सकता है, क्योंकि प्रताप के पिता शालिग्राम की मृत्यु के उपरांत सुवामा [प्रताप की माँ] की आर्थिक स्थिति काफी पतली हो जाती है। मुंशी शालिग्राम पर काफी कर्ज था और उसे चुकता करने में उनका दिवाला पीट जाता है। अतः विरजन की माँ उसकी शादी डिप्टी श्यामाचरण के पुत्र कमलाचरण से कर देती है जो एक ओछले किस्म का लड़का था और जिसके कारण बादमें विरजन के जीवन में अनेक समस्याएं आती हैं।

/3/ गबन की समस्या :

"गबन" उपन्यास का रमानाथ जालपा की सहेली रतन का मुंह बन्द करने के लिए दफ्तर से रुपये लाता है, पर जालपा को इसके बारे में कुछ भी नहीं बताता। रमानाथ की अनुपस्थिति में रतन आती है और अपने रुपये मांगती है। जालपा ताव में आकर वे रुपये दे देती है। रमानाथ को जब इस बात का पता चलता है, तब वह मारे शर्म और डर के घर से भाग जाता है। यहां सारी बात जो पैदा हुई है वह धन के अभाव के कारण है। यदि रमानाथ के पास पैसे होते तो सराफ भी उसके साथ इस प्रकार न पेश आते।

यहाँ एक बात और ध्यातव्य है। धन के अभाव की स्थिति

भी भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों में भिन्न-भिन्न तरह से होती है । रमानाथ का परिवार मध्यवित्त परिवार है । जहां तक खाने-पीने का सवाल है, कोई तंगी नहीं है । परंतु मध्यवर्ग के लोगों का वर्ग-चरित्र झूठ, धोखेबाजी, अहंकारी, झूठी शान बघारना जैसे अभिलक्षणों से मंडित होता है । रमानाथ यदि झूठी शान न बघारता तो कोई समस्या न थी । वस्तुतः इस वर्ग के लोग अपनी हैसियत से ज्यादा खर्च करते हैं, उधार मिले तो हाथी भी खरीद लेते हैं और चुकाने के लिए फिर इधर-उधर के रास्तों की तलाश में लगते हैं । "गोदान" का होरी भी भोला की गाय ले आता है, क्योंकि उधार उसके लिए मुफ्त के बराबर है । स्वयं प्रेमचन्दजी के परिवार में ऐसी घटना घट चुकी है ऐसा हम पहले निर्दिष्ट कर चुके हैं । अजायबलाल के छोटे भाई डाकखाने में मुंशी थे और सरकारी गबन के सिलसिले में उन्हें सात साल की सज़ा भी हुई थी । जब लौटे तो शर्म के मारे किसीको मुंह न दिखा सके और कहीं चले गये । फिर उनका पता न चला ।[32]

"रंगभूमि" का ताहिरअली धनाभाव के कारण हमेशा तंगदस्ती में रहता है । अतः अपने घर के तात्कालिक खर्चों की पूर्ति के लिए कई बार आफिस से कुछ रुपये उठा लाता है । बाद में जमा कर देता है । एक बार मालिक जानसेवक को हिसाब में कुछ गड़बड़ दिखती है तो वह ताहिरअली को पुलिस में सौंप देते हैं । सूरदास के मृत्यु के समय जान-सेवक भी उसे मिलने जाता है । तब सूरदास जानसेवक से एक प्रार्थना करता है कि वह ताहिरअली को फिर से नौकरी में ले ले क्योंकि उसके बालबच्चों की हालत बहुत ही खराब है । तब वह कहता है — "मुझे अत्यंत खेद है कि तुम्हारे आदेश का पालन न कर सकूंगा । किसी नीयत के बुरे आदमी को आश्रय देना मेरे नियमों के विरुद्ध है, मैं उसे छोड़ नहीं सकता । .... मैं इतना कर सकता हूं कि ताहिरअली के बाल-बच्चों का पालन-पोषण करता रहूं । लेकिन उसे नौकर न रखूंगा ।"[33]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि गरीबी की स्थिति के कारण ही "गबन" जैसी घटनाएं अस्तित्व में आती हैं ।

/4/ स्वास्थ्य की समस्या :

दरिद्रता के कारण ही स्वास्थ्य की समस्या सामने आती है । स्वयं प्रेमचन्दजी के खराब स्वास्थ्य के पीछे उनकी आर्थिक अवदशा कारण-भूत थी । "गोदान" का होरी भी गरीबी , अभाव और तंगी के कारण असमय बूढ़िया जाता है । पैसों के अभाव के कारण व्यक्ति हमेशा चिंता में घिरा रहता है , जिसका प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर पड़े बिना नहीं रह सकता । इस बात का चित्रण शैलेश मटियानी की एक कहानी में अभिव्यक्ति हुआ है । "प्रेतमुक्ति" कहानी का केवल पांडे उसके हलिया का सहपाठी था । परंतु जहां पांडेजी पचास के बाद भी जवान दिखते हैं , वहां हलिया एकदम बूढ़ा हो गया है । प्रेमचन्द की "गुल्ली-डण्डा" कहानी में भी हम इस तत्य को देख सकते हैं । "सद्गति" का दुखिया भी इसी कोटि में आयेगा ।

/5/ किसान से मजदूर , मजदूर से असामाजिक :

किसान अपनी जमीन को बहुत चाहता है । वह उसे अपनी माँ समझता है । अपने खेत में हल चलाने में वह गौरव का अनुभव करता है । परंतु कई बार आर्थिक स्थिति के दबाव में वह अपनी जमीन छोड़कर मजदूरी करने के लिए विवश हो जाता है । "गोदान" का होरी तथा "पूस की रात" का हल्कू ये दोनों इसके उदाहरण हैं । गांव में किसान गिरता है तो मजदूर बन जाता है और मजदूर ऊपर उठता है तो किसान बन जाता है । शहर में गरीब आदमी मजदूर होता है । यदि वह ऊपर उठता है तो यूनियन लीडर या महाजन बन जाता है और नीचे गिरता है तो गुंडा, बदमाश , चोर-उचक्का और उठाईगिर हो जाता है । "गोदान" का गोबर शहर जाकर खोंमचा लगाता है । कुछ कमाई होने पर वैसे सूद पर घुमाता है । परंतु गांव जाने xxxx पर और वहां से शहर में लौटने पर उसका धंधा चौपट हो जाता है । अतः वह अंततः मील में नौकरी — मजदूरी करने लगता है । वहाँ भी छँटनी की स्थिति आती है ।

परंतु एक बात ध्यातव्य है । किसान के मजदूर होने में उसकी "[illegible]" का अंश जरूर होता है, परंतु यदि वास्तविकता को स्वीकार किया जाय तो यह सिद्ध होता है कि मजदूर की स्थिति किसान से फिर भी ठीक है । "पूस की रात" का हल्कू तथा उसकी पत्नी भी यह अनुभव करते हैं -- " तुम छोड़ दो अबकी से खेती । मजूरी में सुख से एक रोटी खाने को मिलेगी । किसीकी धौंस तो न रहेगी । अच्छी खेती है ! मजूरी करके लाओ, वह भी उसीमें झोंक दो, उस पर से धौंस । "[34] हल्कू की बीवी मुन्नी के इस कथन में हमें उक्त तथ्य के संकेत मिलते हैं । "कफन" के माधव और घीसू भी कभी-कभी मजदूरी कर लेते हैं ।

"गोदान" में लेखक ने सामंतवादी-पद्धति तथा पूंजीवादी-पद्धति के शोषितों की तुलना भी प्रस्तुत की है । शोषण तो दोनों स्थानों पर हो रहा है, पर पूंजीवादी पद्धति में शोषितों की स्थिति फिर भी कुछ-कुछ बेहतर है । "गोदान" का गोबर कहता है -- "वह गुलामी करता है, लेकिन भरपेट खाता तो है । केवल एक ही मालिक का तो नौकर है । यहां तो जिसे देखो रोब जमाता है ; गुलामी है, पर सूखी । मेहनत करके अनाज पैदा करो, और जो रुपये मिलें, वह दूसरों को दे दो । आप बैठे राम-राम करो । "[35]

इस संदर्भ में डा॰ मन्मथनाथ गुप्त ने सही विश्लेषण किया है "कि गांधीवादी आदर्शों के प्रति बुद्धिगत रूप से झुके होने पर भी प्रेमचन्द ने इस पुस्तक में अपनी यथार्थवादी कला की अपरिहार्यता के कारण तथ्यों का सही चित्रण कर यह बतला दिया है कि मजदूर का जीवन किसान के जीवन से अच्छा है । "[36]

(घ) श्रम की समस्या :

आर्थिक-संघर्ष और श्रम में चोली-दामन का साथ है । जहां आर्थिक संघर्ष होगा, वहां श्रम की समस्या होगी ही । श्रम लेना

समस्या का तात्कालिक उपाय हो सकता है, परंतु उससे समस्याएं और भी बढ़ती हैं। ऋण की समस्या के गरीबों और अमीरों के परिणाम भी अलग-अलग होते हैं। यहाँ किसीको प्रश्न हो सकता है कि अमीरों को ऋण की समस्या कहाँ आयेगी ? तो यह बता देना आवश्यक है कि अमीर लोग भी अपने उद्योग-धंधों के लिए सरकार, बैंक तथा शेरों के द्वारा ऋण लेते हैं। परंतु एक तो उसका सूद कम होता है और यदि कंपनी घाटे में जाती है तो ऐसी धूर्तचाल चलते हैं ऋण अदा न करना पड़े। इस प्रकार वह सरकार अर्थात् लोगों के पैसों पर मौज करते हैं। जबकि दूसरी ओर गरीब ऋण के कारण मरता है, खटता है, पिसता है।

प्रेमचन्दजी ने ऋण की इस समस्या को अनेक स्थानों पर उठाया है, क्योंकि वे खुद भी ताज़िन्दगी इस समस्या के शिकार रहे।

"ऋण की समस्या भारतीय कृषक समाज को लगा हुआ वह अभिशाप है जिसने उसके जीवन के सारे तत्वों को चूस डाला है। डा. रामविलास शर्मा के मतानुसार यह ऋण की समस्या ही 'गोदान' की मुख्य समस्या है। जिन दिनों में गोदान लिखा जा रहा था, प्रेमचंदजी स्वयं गले तक ऋण में डूबे हुए थे। अतः होरी की समस्या एक तरह से प्रेमचन्दजी की समस्या है।" [37]

'गोदान' में होरी अपनी समझ के धर्म, 'मरजादा', रूढ़िवादिता, अज्ञान, अंधविश्वास के कारण ऋण की समस्या के चपेट में आ जाता है। जब भी समाज के ठेकेदारों की ओर से कोई दबाव आता है, और यदि उस समय कोई व्यक्ति उसे ऋण देने तैयार होता है तो वह तुरंत उसके लिए राजी हो जाता है। होरी का भाई भाई हीरा होरी की गाय सुंदरिया को जब विष देकर मार डालता है, तब उस केस को दबाने के लिए दरोगा को रिश्वत देनी पड़ती है और उस रिश्वत के पैसों के जुगाड़ के लिए होरी गाँव के एक महाजन को 'कागद' लिखकर तीस रुपया कर्ज़ लेता है। बीस रुपया दरोगाजी को और दस रुपया पटवारी आदि को।

यहां एक बात और ध्यान देने योग्य है । सरकार या पुलिस के लोग कभी अकेले रिश्वत नहीं खाते । "लायन-शेयर" भले उनका हो , परंतु छोटे-छोटे कई टुकड़े वे दूसरे लोगों में बांट देते हैं , ताकि उनका "भरम" बना रहे और आगे भी यह सिलसिला चलता रहे । यदि दूसरों का हिस्सा इसमें नहीं होता तो वे लोग होरी को रिश्वत के लिए पैसे ही नहीं देते और न उसे रिश्वत देने के लिए समझाते । "सेवासदन" के कृष्णचन्द्र रिश्वत लेने के मामले में अनाड़ी होने के कारण पकड़े जाते हैं ।

'गोदान' में प्रेमचन्दजी ने यह बताया है कि धर्म के झूठे ख्यालों के द्वारा कैसे गरीबों का शोषण होता है । आठ-नौ साल पहले दातादीन नामक ब्राह्मण ने होरी को तीस रुपये उधार दिये थे । गोबर जब शहर से आता है तो उसके ठाठ देखकर दातादीन को अपने रुपये याद आते हैं । वह तीस रुपयों पर सूद वगैरह जोड़कर दो सौ रुपये कर्ज निकालता है । इस पर गोबर ने जमीन पर ठीकरे से हिसाब लगाकर कहा कि दस साल में छत्तीस रुपये होते हैं , असल मिलाकर छाछठ । उसके सत्तर रुपये ले लो । इससे बेशी एक कौड़ी भी न दूंगा ।[30] दातादीन दो सौ पर अड़ जाता है , तब गोबर उसे अदालत जाने के लिए कहता है । इस पर दातादीन यह कहकर चला जाता है कि यदि वह ब्राह्मण है , तो अपने पूरे दो सौ रुपये लेकर दिखा देगा ।

अब यहां होरी का आदर्शवाद और धर्म-विषयक और जाति-विषयक उसकी चेतना बीच में आती है । यदि ठाकुर या बनिये के रुपये होते तो उसे ज्यादा चिंता न होती , लेकिन ब्राह्मण के रुपये । उसकी एक पाई भी दब गयी तो हड्डी तोड़कर निकलेगी । "सवा सेर गेहूं" का शंकर किसान भी लगभग वैसा ही सोचता है ।

शंकर के यहां एक दिन कोई महात्मा पधारते हैं । घर में गेहूं का एक भी दाना नहीं था । शंकर गांव के एक विप्र महाराज से सवा सेर गेहूं ले आता है और महात्मा को भोजन करवाता है । महात्मा तो चले जाते हैं । विप्र महाराज साल में दो बार शंकर से खलिहानी लिया

करते थे । अब शंकर अपने सीधेपन और भोलेपन में यह सोचता है कि महाराज को सवासेर गेहूं की बात करना ओछापन होगा । अतः वह अपनी समझ से सोचकर खलिहानी पंसेरी से कुछ ज्यादा ही दे देता है और समझ लेता है कि विप्र महाराज के कर्ज से वह मुक्त हो गया । इस बात को सात साल गुजर गये, तब एक दिन विप्र महाराज ने शंकर को [illegible] कहा कि भाई कल आकर अपने बीज-बेंग का हिसाब कर लेना । सवासेर गेहूं अब साढ़े पांच मन हो गए थे । शंकर की हालत खराब थी । वह किसान से मजदूर हो गया था । उसने विप्र महाराज से चिरौरी करते हुए कहा कि पांडे क्यों एक गरीब को सताते हो, मेरे खाने का ठिकाना नहीं, इतना गेहूं किसके घर से लाऊंगा ? तब विप्र महाराज बिगड़कर कहते हैं कि चाहे जिसके घर से लाओ, मैं छटांक भर भी न छोडूंगा । यहां न दोगे, भगवान के घर तो दोगे ? इस पर प्रेमचन्दजी की जो टिप्पणी है, वह ध्यान देने योग्य है --

"शंकर कांप उठा । हम पढ़े-लिखे आदमी होते तो कह देते, अच्छी बात है, ईश्वर के घर ही देंगे; वहां की तौल यहां से कुछ बड़ी तो न होगी । कम से कम इसका कोई प्रमाण हमारे पास नहीं, फिर उसकी क्या चिंता । किंतु शंकर इतना तार्किक, इतना व्यवहार-चतुर न था । एक तो ऋण -- वह भी ब्राह्मण का -- बही में नाम रह गया तो सीधे नरक में जाऊंगा, इस खयाल से ही उसे रोमांच हो गया । बोला, महाराज, तुम्हारा जितना होगा यहीं दूंगा, ईश्वर के यहां क्यों दूं ?"[39]

इस ऋण को चुकाने में शंकर मर जाता है, तो उसके बाद उसका बेटा विप्र महाराज के यहां चाकरी करने लगता है । यहां होरी और शंकर तात्कालीन और विप्र महाराज की जाति देखते हैं, उनका धर्म नहीं । यह नहीं सोचते कि ब्राह्मण होकर भी ये लोग कितना अधर्म कर रहे हैं, अन्याय कर रहे हैं और ब्राह्मण धर्म से परे नहीं होता । कहानी के अंत में लेखक ने बड़ी अच्छी और व्यंग्यात्मक टिप्पणी जोड़ी

है — " पाठक ! इस वृतान्त को कपोल-कल्पित न समझिए । यह सत्य घटना है । ऐसे शंकरों और ऐसे विप्रों से दुनिया खाली नहीं है । "40

"रंगभूमि" का ताहिरअली , "ग़बन" का रमानाथ और दयानाथ , "वरदान" के शालिग्राम आदि कई लोग इस ऋण की समस्या के शिकार हैं । रमानाथ , दयानाथ तथा शालिग्राम मध्यवित्तीय वर्ग की प्रदर्शनप्रियता तथा झूठा स्वांग रचने की मनोवृत्ति के कारण ऋण के शिकार हुए ; परंतु ताहिरअली की स्थिति तो वास्तव में दयनीय है । विमाता और उसके बच्चे तथा अपने बीवी-बच्चे के पालन-पोषण में वह बेचारा पिसता जा रहा है । परिवार का खर्च और आमदनी इन दो पाटों को पाटने के लिए उसे कर्ज़ लेना ही पड़ता है । कई बार तो कर्ज़ चुकाने के लिए भी कर्ज़ लेना पड़ता है । [वर्तमान समय में हमारे देश की स्थिति प्रायः ऐसी ही हो गई है , एक अनुमान के अनुसार इस समय हमारे देश अमरिका तथा आई.एम.एफ का ही लगभग 23,000 करोड़ रुपयों का कर्ज़ है ।] ताहिरअली की स्थिति ऐसी ही है । और बिलकुल यही स्थिति प्रेमचन्दजी की भी थी ।

निःसंदेह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्दजी के जीवन में आर्थिक-संघर्ष शरीर पर लगाए डाम की तरह अंत तक चिपका रहा । अपनी सोच-समझ तथा रुपयों-पैसों की निःस्पृहता के कारण भी ऐसा हुआ , परन्तु इतना निश्चित है कि उनकी माली हालत कभी तंदुरस्त न रही । परिणामस्वरूप उनके कथा-साहित्य में आर्थिक-संघर्ष का चित्रण बहुत ही सटीक और यथार्थ ढंग से हुआ है , इसमें दो मत नहीं हो सकते ।

पारिवारिक-संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में

पूर्ववर्ती अध्यायों में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि प्रेमचन्दजी को पारिवारिक संघर्ष भी कम नहीं झेलना पड़ा है । यह संघर्ष तो उन्हें विरासत में मिला हुआ है । मुंशी अजायबलाल पर पारिवारिक जिम्मेदारियाँ बहुत ज्यादा थीं , क्योंकि पिता गुरदयालसिंह द्वारा अर्जित

जमीन तो जा चुकी थी । पैतृक छः बीघा जमीन भी महावीरलाल के पुत्र बलदेवलाल के पास थी । कोलेश्वरलाल की असमय मृत्यु हो गई थी । उनकी पत्नी तथा बच्चों की जिम्मेदारी भी अजायबलाल पर थी । छोटे भाई उदितनारायणलाल को अजायबलाल ने ही डाकखाने में नौकरी दिलवाई थी , परंतु "गबन" के मामले में फंस गये और उन्हें सात साल की सज़ा हो गई । छूटने पर भी वह वापस न आकर कहीं चले गये । अतः उनके परिवार को पालने का दायित्व भी उन्हें ही वहन करना पड़ा । यह कम था कि पत्नी की मृत्यु हो गई । संतानों के रहते हुए भी अजायबलाल ने दूसरी शादी की । अतः बालक नवाबराय को सौतेली माँ का कटु व्यवहार भी सहन करना पड़ा । सात-आठ साल के बाद जवान बीवी और उसके दो बच्चों का भार भी नवाब के कंधों पर डालकर वे स्वर्ग को सिधार गये ।[4] जाते-जाते नवाब की शादी भी एक निहायत ही भद्दी, कुरूप और क्रूर औरत (क्योंकि वह उम्र में भी नवाब से कुछ बड़ी ही थी) से करते गये । ऐसे परिवार में झगड़े और कलह न हों तो ही आश्चर्य ।

अब इस पारिवारिक संघर्ष के कारण जिन स्थितियों का निर्माण होता है और जिनके कारण परिवार में तनाव व संघर्ष पैदा होता है , उनका एक-एक करके विश्लेषण करने का प्रयत्न करेंगे ।

(क) परिवार का टूटना : बंटवारा :

सामंतवाद की टूटन और पूंजीवाद का वर्चस्व , यह प्रक्रिया प्रेमचन्द के समय में शुरू हो गई थी । ग्राम्य-समाज में मुख्य व्यवसाय खेतीबाड़ी का होने के कारण ही संयुक्त-परिवार की प्रथा को महत्व दिया जाता है । खेतीबाड़ी से जो आमदनी होती है , उस पर भी पूरे परिवार का अधिकार होता है और यह बताना कठिन होता है कि कौन कितना कम या ज्यादा कमाता है । पर पूंजीवाद में व्यक्ति नौकरी करने लगा और नौकरी से मिलनेवाली तनख्वाह के आधार पर घर में उसके महत्व को आंका जाने लगा । पहले घर में बड़े-बूढ़े , पिता या बड़े भाई का शासन चलता था । उन्हें शारीरिक श्रम भी कम ही

कर्ता कहलाता था । कभी-कभी रूप में उन्हें घर के मुखिया या राजा के रूप में भी देखा जाता था । परन्तु पूंजीवाद अपना असर दिखा रहा था । प्रेमचन्द के समय में ही परिवारों के टूटने की प्रक्रिया शुरू हो गई थी । पारिवारिक वरिष्ठता के स्थान पर आर्थिक-वरिष्ठता को महत्व मिलता जा रहा था ।

"चोरी" कहानी की चाची अपने बेटे को डांटते हुए यही तो कहती है कि तुम्हारे पिता नौकरी नहीं करते, खेती का काम करते हैं, हर महीने रुपये कमाकर नहीं लाते, इसलिए तुमको चोर, झूठा और मक्कार समझा जायेगा । जिनके बाप नौकरी करते हैं उन पर यह आरोप क्या लग सकता है । "जिसके भाग में मिठाई लिखी थी, उसने मिठाई खायी । तेरे भाग में तो लात खाना ही लिखा था । "42 "शंखनाद" कहानी का गुमान घर का कामकाज नहीं करता, दिन-रात आवारागर्दी करता घूमता रहता है, अतः उसकी भावजों को वह फूटी आंख नहीं सुहाता और उसके बीवी-बच्चों के साथ भी दुर्भांत होती रहती है । एक दिन गुरदीन मिठाईवाला अपना खोंचा लेकर आता है । गुरदीन बड़े मीठे स्वभाव का है । गुमान के बड़े भाई भान की पत्नी अपने दोनों बच्चों के साथ उपस्थित हुई । गुरदीन ने मीठी बातें करनी शुरू कीं । पैसे झोली में रखे, धेले की मिठाई दी और धेले का आशीर्वाद । लड़के दोने लिए उछलते-कूदते घर में दाखिल हुए । "अगर सारे गांव में कोई ऐसा बालक था, जिसने गुरदीन की उदारता से लाभ न उठाया हो, तो वह बांके गुमान का लड़का धान था । "43 दूसरे बच्चे उसे चिढ़ा-चिढ़ाकर मिठाई खाते हैं । धान की मां पहले तो बच्चे को प्यार से समझाती है, पर बच्चा तो बच्चा ही है, उसने तो रो-रोकर दुनिया सिर पर उठा ली । तब वह झल्लाकर दो-तीन थप्पड़ रसीद करते हुए झुड़ककर बोलती है — " चुप रह अभागे । तेरा ही मुंह मिठाई खाने का है ? अपने दिन को नहीं रोता, मिठाई खाने चला है । " 44 इस दृश्य से गुमान चौधरी का हृदय-परिवर्तन हो जाता है और वह अपनी पत्नी से कहता है कि परमात्मा ने

बाबा हो जाने से लोग इस घर में मेरा और मेरे बाल-बच्चों का भी आदर करेंगे।[45] वस्तुतः यहाँ संयुक्त-परिवार के बिखरने के आसार नज़र आने लगे हैं। धीरे धीरे मान-मर्यादा टूटने लगी है और छोटे भाई और बेटे बड़े भाई और पिता के सामने मुंह उठाने लगे हैं। "सुजान भगत" कहानी में सुजान महतो गया जाने के बाद कुछ ज्यादा ही दान-पुण्य में लगे रहते हैं। एक दिन एक भिक्षुक आता है। भगत की पत्नी बुलाकी किसी और काम में व्यस्त थी, अतः वह खुद छबड़ी लेकर भिक्षुक को देने जाते हैं। तब उनका बेटा भोला उनके हाथ से छबड़ी छीन लेता है और कहता है — "सेंत का माल नहीं है, जो लुटाने चले हो। छाती फाड़-फाड़ कर काम करते हैं, तब दाना घर में आता है। ... भीख भीख की तरह दी जाती है, लुटाई नहीं जाती। हम तो एक बेला खाकर दिन काटते हैं कि पत-पानी बना रहे, और तुम्हें लुटाने की सूझी है। तुम्हें क्या मालूम कि घर में क्या हो रहा है?"[46]

"सुभागी" कहानी के तुलसी महतो अपनी बालविधवा पुत्री सुभागी को बहुत प्यार करते थे। सुभागी भी घरकाम तथा खेतीबाड़ी दोनों में निपुण थी, परंतु तुलसी महतो के पुत्र रामू तथा उसकी बहू को सुभागी का उस घर में रहना खटकता था। अतः वे लोग अपने मां-बाप से अलग हो जाते हैं। सुभागी बेटी होते हुए भी बेटे के सारे कर्तव्यों का निर्वाह करती है। बाप के मरने पर भी रामू नहीं आता। उनका क्रिया-कर्म भी सुभागी ही करती है। बाप की मृत्यु के बाद मां भी चल बसती है। 500/- रुपये पिता के क्रिया-कर्म में लगे थे, 200/- रुपये माता के काम में लग गये। सुभागी पर गाँव के सजनसिंह का 500/- रुपये का कर्ज चढ़ गया। तीन साल तक सुभागी ने रात को रात और दिन को दिन न समझा। दिन में खेतीबाड़ी का काम करती और रात को चार-चार पसेरी आटा पीस डालती। तीसरे दिन 15/- रुपये लेकर वह सजनसिंह के पास पहुंच जाती। इसमें कभी नागा न होता। इस प्रकार तीन वर्षों में उसने सजनसिंह के

रूप में सुरक्षित पा ली । सज्जनसिंह ने सुभागी के शील-स्वभाव और कर्मठता से प्रेरित होकर उसे अपनी बहू बना ली । यहां यह तथ्य ध्यातव्य रहे कि छोटी जातियों में तो तब भी विधवा-विवाह होते ही थे ।

"अलग्योझा" तथा "सवा सेर गेहूं" कहानी में परिवार के टूटने और बिखरने की कथा-व्यथा को लिया गया है । एक बात स्मरण रहे कि प्रेमचन्दजी संयुक्त-परिवार के पक्ष में थे और विभक्त परिवार से उन्हें तकलीफ होती थी । "सवा सेर गेहूं" का शंकर किसान बंटवारे के कारण ही किसान से मजदूर की अवस्था में आ जाता है । प्रेमचन्दजी ने इस स्थिति का संवेदनापूर्ण चित्रण किया है --

"उसका छोटा भाई मंगल उससे अलग हो गया था । एक साथ रहकर दोनों किसान थे, अलग होकर मजूर हो गए थे । शंकर ने चाहा कि द्वेष की आग भड़कने न पाए, किन्तु परिस्थिति ने उसे विवश कर दिया । जिस दिन अलग-अलग चूल्हे जले वह फूट-फूट कर रोया । आज से भाई-भाई शत्रु हो जायेंगे, एक रोयेगा तो दूसरा हँसेगा, एक के घर मातम होगा तो दूसरे के घर गुलगुले पकेंगे । प्रेम का बंधन, खून का बंधन, दूध का बंधन आज टूट जाता है । .... पांच बीघे के आधे खेत रह गए, एक बैल रह गया, खेती क्या खाक होती ? अंत को यहां तक नौबत पहुंची कि खेती केवल मर्यादा-रक्षा का साधन-मात्र रह गई, जीविका का भार मजूरी पर आ पड़ा ।" 47

"अलग्योझा" कहानी में रग्घू की पत्नी मुलिया के कारण बंटवारे की नौबत आती है । रग्घू बंटवारे के पक्ष में नहीं था । आखिरकार वह घुल-घुल कर मर जाता है । मुलिया विधवा हो जाती है । मुलिया की सौतेली सास पन्ना और उसके बेटे केदार की समझदारी से यह परिवार पुनः जुड़ जाता है । "घरजमाई" का हरिधन सौतेली माँ के अच्छे व्यवहार के बावजूद लोगों के बहकाने में आकर अपना हिस्सा लेकर ससुराल चला जाता है और बाद में वहां से दुत्कारें खाकर तथा अपनी जायदाद गंवाकर वापस आता है तब उसकी माँ (सौतेली) प्रेम से उसका स्वागत करती है । यहाँ जायदाद के बंटवारे

के पीछे हरिधन की पत्नी तथा उसके स्वार्थी ससुराल वाले जिम्मेदार हैं । "बाप के मरते ही वह घर गया और अपने हिस्से की जायदाद को कूड़ा करके रुपयों की थैली लिए फिर आ गया । अब उसका दूना आदर-सत्कार होने लगा । उसने अपनी सारी संपत्ति सास के चरणों पर अर्पण करके अपने जीवन को सार्थक कर लिया ।"[48] परंतु कुछ ही दिनों में बनावटी प्रेम का मुलम्मा उतरने लगता है और वे ही सास-साले अब उससे बुरी तरह पेश आने लगे । और तो और उसकी पत्नी गुमानी भी उन लोगों की हां-में-हां कर रही थी ।

कहानियों की भांति उपन्यासों में भी यह प्रसंग अनेक स्थानों पर आया है । "सवा सेर गेहूं" के शंकर की भांति "गोदान" के होरी के यहाँ भी बँटवारा हो जाता है । होरी के दो भाई थे -- शोभा और हीरा । अतः जमीन इन तीनों में बंटकर और भी कम रह जाती है । बँटवारा होने के बाद भी होरी का दिल तो जलता रहता है और वह बराबर अपने भाइयों का ख्याल रखता है और भला चाहता है, परंतु ये दोनों भाई होरी तथा धनिया के लिए द्वेषभाव रखते हैं । जब होरी भोला अहिर को उल्लू बनाकर उधार में गाय ले आता है, तब इन दोनों की छाती पर साँप लोटने लगता है और वे सोचते हैं कि पहले का लेता हुआ धन अब निकल रहा है -- "जब तक एक में थे, एक बकरी भी नहीं ली । अब पछाईं गाय ली जाती है । भाई का हक मारकर किसी को फलते-फूलते नहीं देखा । .... अच्छा तो ये रुपये कहाँ से आ गये? कहाँ से इन बरस पड़ा । उतने ही खेत तो हमारे पास भी हैं । उतनी ही उपज हमारी भी है । फिर क्यों हमारे पास कफन को कौड़ी नहीं और उनके घर नयी गाय आती है?"[49] यह कथन हीरा का है । शोभा फिर भी थोड़ा समझदार है । आखिर द्वेषाग्नि में जलते हुए यही हीरा गाय को विष देकर मार डालता है और बात के खुल जाने पर भाग जाता है । गोहत्या के अपराध-बोध से पीड़ित होकर अंततोगत्वा वह पागल हो जाता है ।

उसके परिवार का बोझ भी होरी पर ही आता है । होरी अपनी "मरजादा" धर्म , नीति आदि के कारण कर्जदार होता जाता है । झुनिया से प्रेम-विवाह के कारण गोबर शहर जाता है और वहाँ वह अच्छा कमाने लगता है । बीच में एक बार जब घर आता है तो घर के रंग-ढंग से दुःखी होता है , परंतु फिर अपने परिवार की चिंता करके पुनः शहर चला जाता है । इस प्रकार होरी का परिवार फिर एक बार बंटता है ।

"रंगभूमि" का ताहिरअली अपने सौतेले भाई माहिरअली को पेट काटकर पढ़ाता है । उसके कारण वह कर्जदार भी बनता है । सौतेली माँ तथा उसके बच्चों के कारण वह हमेशा पैसों की तंगी में रहता है । अतः एक बार आफिस के कुछ पैसे खर्च कर डालता है । मालिक जानसेवक उसे पुलिस में सौंप देता है । उसे जेल हो जाती है । तब माहिरअली जो दारोगा हो गया है , अपनी माँ और बीवी को लेकर अलग हो जाता है । ताहिरअली की बीवी कुलसुम सिलाई-काम करके किसी तरह अपने बच्चों को पालती है ।

(घ) सौतेली माँ का दुर्व्यवहार :

प्रेमचंदजी की माता का देहान्त जब वे आठ साल के थे तब हो गया था । दो ही साल में पिताने दूसरी शादी की । प्रेमचन्दजी की विमाता उनके पिता से अधिक जवान थी । ऐसी स्थिति में उनका कलह-प्रिय होना स्वाभाविक ही कहा जायगा । प्रेमचन्द उन्हें चाची कहते थे और अनेक प्रसंगों में हम देखते हैं कि उनका व्यवहार धनपतराय से अच्छा नहीं था । जब प्रेमचन्द का विवाह एक कुरूप औरत के साथ कर दिया जाता है , तब प्रेमचन्द तो शायद उससे निबाह लेते , परंतु उसके साथ भी चाची की रात-दिन चिक-चिक चलती रहती थी । बाद में प्रेमचन्दजी ने शिवरानी देवी से विवाह किया , तब उनके साथ भी रात-दिन झगड़े होते रहते थे । अतः उनके कथा साहित्य में हमें अनेक स्थानों पर विमाता के दुर्व्यवहार के प्रसंग उपलब्ध होते हैं ।

"अलग्योझा" कहानी का प्रारंभ ही लेखक इस वाक्य से करते हैं -- " भोला मेहतो ने पहली स्त्री के मर जाने के बाद दूसरी सगाई की , तो उसके लड़के रग्घू के लिए बुरे दिन आ गए । " 50 रग्घू की उम्र उस समय दस साल की थी । चैन से गांव में गुल्ली-डण्डा खेलता फिरता था , परंतु नयी मां के आते ही चक्की में जुतना पड़ा । "पन्ना रूपवती स्त्री थी और रूप और गर्व में चोली-दामन का नाता है । वह अपने हाथों से कोई काम न करती । "गोबर रग्घू निकालता , बैलों को सानी रग्घू देता , रग्घू ही जूठे बर्तन मांजता । भोला की आंखें कुछ ऐसी फिरीं कि उसे अब रग्घू में सब बुराइयां ही बुराइयां नज़र आतीं । पन्ना की बातों को वह प्राचीन मर्यादानुसार आंखें बन्द करके मान लेता था । रग्घू की शिकायतों की जरा परवाह न करता । नतीजा यह हुआ कि रग्घू ने शिकायत करना ही छोड़ दिया । " 51

"प्रेरणा" , "घर जमाई" , "सौतेली मां" , "स्मृति का पुजारी" , "भूत" आदि कहानियों में मां के न रहने का दंश हमें मिलता है ।

"कर्मभूमि" उपन्यास के अमरकांत की मां का देहान्त भी उसके बचपन में हो गया था । "अमरकान्त ने अपने जीवन में माता के स्नेह का सुख न देखा था । जब उसकी माता का अवसान हुआ , तब वह बहुत छोटा था । उस दूर अतीत की कुछ धुंधली-सी और इसलिए अत्यंत मनोहर और सुखद स्मृतियां शेष थीं । " 52

अमरकांत के पिता समरकांत ने पत्नी के मरते ही दूसरा ब्याह कर लिया था , ठीक मुंशी अजायबलाल की तरह । अतः इस उपन्यास में अमरकांत की व्यथा के रूप में मानो बालक धनपतराय की व्यथा ही अभिव्यक्त हुई है -- " अमरकांत की माता का उसके बचपन ही में देहान्त हो गया । समरकांत ने मित्रों के कहने-सुनने से दूसरा विवाह कर लिया था । उस साल के बालक ने नई मां का

बड़े प्रेम से स्वागत किया ; लेकिन उसे जल्द मालूम हो गया कि उसकी नयी माता उसकी ज़िद और शरारतों को उस क्षमा दृष्टि से नहीं देखतीं, जैसे उसकी माँ देखती थीं । वह अपनी माँ का अकेला लाड़ला था । बड़ा ज़िद्दी , बड़ा नटखट । जो बात मुँह से निकल जाती , उसे पूरा ही करके छोड़ता । नई माताजी बात-बात पर डाँटती थी । यहाँ तक कि उसे माता से द्वेष हो गया । जिस बात को वह मना करती , उसे अवश्य ही करता । पिता से भी ढीठ हो गया । पिता और पुत्र में स्नेह का बंधन न रहा । " 53

"नया विवाह" में सौतेली माँ के भाव की कोई बात नहीं है , परंतु लेखक ने प्रकारान्तर से यह बताया है कि पुरुष जब दूसरा विवाह करता है , तब उस नयी दुल्हन के प्रभाव में इतना आ जाता है कि वह उसकी हर बात मानने को तैयार हो जाता है । "जब से लाला डींगामल ने नया विवाह किया है , उनका यौवन नए सिरे से जाग उठा है । जब पहली स्त्री जीवित थी , तब वे घर में बहुत कम रहते थे । प्रातः से दस-ग्यारह बजे तक तो पूजा-पाठ ही करते रहते थे । फिर भोजन करके दुकान चले जाते । वहाँ से एक बजे रात को लौटते और खा-पीकर सो जाते । यदि लीला कभी कहती , जरा और सबेरे आ जाया करो , तो बिगड़ जाते और कहते — तुम्हारे लिए क्या दुकान छोड़ दूँ या रोजगार बन्द कर दूँ ? .... [परन्तु] जब से नयी पत्नी आयी , लालाजी के जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया । दुकान से अब इतना प्रेम नहीं था । लगातार हफ़्तों न जाने से भी उनके कारोबार में कोई हर्ज नहीं होता था । जीवन के उपभोग की जो शक्ति दिन-दिन क्षीण होती जाती थी , अब वह छींटे पाकर सजीव हो गई थी , सूखा पेड़ हरा हो गया था , उसमें नई-नई कोंपलें फूटने लगी थीं । मोटर नया आ गया था , कमरे नये फर्नीचर से सजा दिए गए थे , नौकरों की भी संख्या बढ़ गई थी , रेडियो आ पहुँचा था और प्रतिदिन नए-नए उपहार आते रहते थे । लालाजी की बूढ़ी जवानी जवानों की जवानी से भी प्रखर हो गई थी । "54

इस कहानी के पीछे प्रेमचन्द का जो मनोविज्ञान है, वह ध्यातव्य है । "डंगामल" नाम जो रखा गया है उसमें भी उपहास की बू आती है । यहाँ लाला डंगामल के द्वारा मानो वे अपने पिता अजायबलाल का ही मजाक उड़ा रहे हैं । उत्तरावस्था में नयी शादी रचाने वाले लोग अपनी नयी पत्नी को प्रसन्न रखने के लिए यौवन के फूलों को मुरझाने से रोक नहीं सकते, अतः तरह-तरह के उपचार के नकली कागज के फूल लेकर उसे प्रसन्न करने के उपहासास्पद प्रयत्न ये लोग करते हैं । "निर्मला" उपन्यास में तोताराम भी ऐसे ही हास्यास्पद प्रयत्न करते हैं । इस उपन्यास में प्रेमचन्द का भीतरी दर्द कहीं कराहता हुआ दिख पड़ता है ।

"निर्मला" उपन्यास की निर्मला का विवाह दुहाजू तोताराम से होता है जिसके तीन बच्चे भी होते हैं । शुरू में निर्मला अपने विवाह के आघात और अपमान को भुलाने के लिए बच्चों में अपना ध्यान केन्द्रित करती है । परंतु मंसाराम की मृत्यु तथा जियाराम की आत्महत्या के पश्चात् उसका स्वभाव चिड़चिड़ा जाता है । इस बीच में वह भी एक बच्ची को जन्म देती है । बच्ची का जन्म उसे महाकृपण बना देता है, क्योंकि घर में हुए लगातार हादसों के कारण मुंशी तोताराम की वह प्रैक्टिस नहीं रही थी, आमदनी घट रही थी, अतः निर्मला अपनी बेटी के लिए बहुत सारा धन संग्रहीत करना चाहती थी, ताकि पैसों के अभाव में उसकी बेटी की वह हालत न हो जो उसकी हुई थी । इन सब कारणों से निर्मला का स्वभाव कुछ कर्कशा भी हो जाता है, जिसके कारण छोटे सियाराम पर मानसिक अत्याचार बढ़ते जाते हैं । यहाँ लेखक ने सियाराम का जो चित्रण किया है उसमें मानो उनकी भी आत्मा बोल रही है —

"मातृहीन बालक के समान दुःखी-दीन प्राणी संसार में दूसरा नहीं होता । और सारे दुःख भूल जाते हैं । बालक को माता याद आ जाती । अम्मा होतीं तो क्या आज मुझे यह सब सहना पड़ता ? मैया

चली गईं ; मैं ही अकेला यह तिरस्कार सहने के लिए क्यों बचा रहा ? सियाराम की आँखों में आँसू की झड़ी लग गई । उसके शोक-कातर कण्ठ से एक गहरे निःश्वास के साथ मिले हुए शब्द निकल आए --- अम्माँ ! मुझे क्यों भूल गईं , मुझे क्यों नहीं बुला लेतीं ? " [55]

वैसे भी सास-बहू के झगड़े हमारे समाज में सामान्यतया होते रहते हैं , परंतु यदि सास सौतेली हो तो इन झगड़ों में और भी अभिवृद्धि होती है और रात-दिन "झमक" मची रहती है । "अलग्योझा" कहानी में पन्ना और मुलिया में रात-दिन तनातनी होती रहती है ; उसी प्रकार "रंगभूमि" उपन्यास में ताहिरअली की सौतेली माँ तथा उसकी बीवी कुलसुम में भी तनाव की स्थिति पायी जाती है । "अलग्योझा" में जहाँ मुलिया (बहू) इसके लिए दोषी है , वहाँ "रंगभूमि" में ताहिर-अली की माँ को कर्कशा बताया है । प्रेमचन्दजी इन सब वाक्यों के भुक्तभोगी रहे हैं , वे दूसरे शब्दों में कहें तो यह उनका भोगा हुआ यथार्थ है , अतएव यहाँ उनका वर्णन संवेदना के आँसुओं से भिगा हुआ प्रतीत होता है । अतः कहने को मन होता है बाबा नागार्जुन के शब्दों में ---

" माँ की स्मृति से बिलख-बिलख
जब रोया सिया था 'निर्मला' में
या "कर्मभूमि" का अमर रोया माँ की भींगी स्मृतियों में
प्रेमचन्द सच-सच बतलाना
सिया रोया , अमर रोया
या तुम रोये थे ? " [56]

(ग) पिता-पुत्र में तनाव :

पिता-पुत्र में बढ़ता तनाव यह भी हमारी पारिवारिक ज़िन्दगी का एक अभिशाप बनता जा रहा है । प्रेमचन्दजी के पिता की मृत्यु सन् 1897 में हुई । उस समय प्रेमचन्दजी की अवस्था केवल सत्रह वर्ष की थी , अतः उनमें सीधा संघर्ष तो नहीं पाया जाता , परंतु

[illegible] अजायबलाल के कारण उन्हें जो भुगतना पड़ा उसकी तिक्तता उसके तमाम लेखन में मिलती है । पूर्ववर्ती पृष्ठों में अजायबलाल की दूसरी शादी की प्रतिक्रिया को एकाधिक बार बताया गया है , अतः यहां उसकी पुनरावृत्ति न करते हुए केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि इस कारण प्रेमचन्द अपने पिता से बेहद नाखुश थे । दूसरी शादी के कारण उनकी असमय मौत , माथे पर सौतेली मां का त्रास , ऊपर से थोड़े समय में ही परिवार में दो बच्चों का इजाफा करके , बीवी तथा उन बच्चों का भार उनके कंधों पर डालकर स्वयं स्वर्ग सिधार जाना , एक निहायत फूहड़ और कुरूप औरत के साथ कच्ची उम्र में ससुर के कहने पर उनकी शादी रचा देना , इन सब बातों को लेकर प्रेमचन्द बहुत चिढ़े हुए-से रहते थे । अतः इसकी छाया उनके कथा-साहित्य में भी पायी जाती है । इस मुद्दे को प्रेमचन्द में हम दोहरे रूप में देखते हैं । प्रेमचन्द भी ताज़िन्दगी दिल के आदमी रहे , शब्दों के आदमी रहे , भावों के आदमी रहे , अतएव परिवार के लिए कुछ खास कर नहीं पाये । इसकी खीझ या चिढ़ — उन पर उनके परिवार वालों की — भी अवश्य रही होगी । यहां प्रेमचन्द "गोदान" के होरी के समकक्ष या "सुजानभगत" के सुजानभगत की समकक्ष आ जाते हैं । होरी जीवन भर धर्म , नीति , मर्यादा पर मरता रहा और किसान से मजदूर हो गया , ठीक उसी प्रकार प्रेमचन्द "हंस" , "जागरण" , "प्रेस" आदि के कारण कर्ज के मजदूर हो गये ।

उपर्युक्त दोहरे प्रभाव के कारण प्रेमचन्द के किस्से-कहानियों में अक्सर पिता-पुत्र के तनाव की बातें आयी हैं । वैसे वास्तविक रूप से भी हमारे संयुक्त परिवारों में पिता-पुत्र के तनाव बढ़ रहे हैं और एक वस्तुवादी लेखक होने के नाते प्रेमचन्द में इन सबका आना स्वाभाविक माना जायगा , परंतु ऐसे प्रसंगों में वैयक्तिक अनुभवों के कारण विशेष संवेदना प्रकट हुई है , जिसे रेखांकित किया जाना चाहिए ।

मनोवैज्ञानिक दृष्टया देखा जाय तो भी प्रायः पिता-पुत्र में क्रिया-प्रतिक्रिया भाव मिलता है । "सुजानभगत" , "सुभागी" , "घर-जमाई" , "सफेद खून " , "बेटी का धन" , "माँ" इत्यादि कहानियों में इसे हम रेखांकित कर सकते हैं । उसी प्रकार उपन्यासों में देखें तो "गोदान" में होरी और गोबर , "कर्मभूमि" में लाला समरकांत और अमरकांत , "निर्मला" में तोताराम और उसके पुत्र मंसाराम तथा जियाराम ; "वरदान" में डिप्टी श्यामाचरण और कमलाचरण , "रंगभूमि" में सूरदास और मिठुआ (यद्यपि मिठुआ सूरदास का पुत्र नहीं है , पर सूरदास ने उसे पुत्रवत् पाला है) , "रंगभूमि" के ही विनय और राजा भरतसिंह , "गबन" के दयानाथ और रमानाथ , "मंगलसूत्र" के देवकुमार और संतकुमार , "रंगभूमि" के ही जानसेवक और प्रभुसेवक जैसे पिता-पुत्र के चरित्रों में यह तनाव हम देख सकते हैं । कुछेक उदाहरण द्रष्टव्य होंगे --

"सुभागी" कहानी का तुलसी महतो अपनी विधवा बेटी सुभागी को अधिक चाहता है , उसके कारण रामू और उसकी बहू उससे अलग हो जाते हैं और इन दोनों में इतना अंतर आ जाता है कि मरते समय भी तुलसी महतो उसका मुंह नहीं देखना चाहते और रामू भी उनकी अंत्येष्टि में नहीं जाता कि "जिस पिता ने मरते समय भी मेरा मुंह देखना स्वीकार न किया , न वह मेरा पिता है , न मैं उसका पुत्र । " [57]

"माँ" कहानी का आदित्य एक देशभक्त युवान है । अपनी देशभक्ति के कारण उसे कारावास होता है । कारावास में उस पर अत्याचार होते हैं और छूटने के बाद कुछ ही समय में वह अपनी पत्नी तथा पुत्र को अनाथ बनाकर इस दुनिया से बिदा ले लेता है । करुणा संयम और जोखिम से अपने पुत्र को पालती-पोषती और पढ़ाती है । वह चाहती है कि उसका पुत्र प्रकाश भी पिता की भांति देश की सेवा करे , परंतु वह बिलकुल विपरीत दिशा में अंग्रेजी हुकूमत का एक पुर्जा बनने विलायत चला जाता है ।[58] यहाँ भी पुत्र में पिता के कर्म की प्रतिक्रिया दृष्टिगोचर होती है ।

"रंगभूमि" का जानसेवक एक पक्का पूंजीवादी और व्यवसायी व्यक्ति है। कोई भी काम वह बिना अपने फायदे के नहीं करता। उसकी पुत्री सोफिया बीमार होकर राजा भरतसिंह के यहां पहुंच जाती है, उस मौके का भी वह फायदा उठाता है और राजा साहब के दामाद राजा महेन्द्रसिंह से तालुकात बढ़ाने की चेष्टा करता है क्योंकि वे म्युनिसिपालिटी के प्रधान थे और उनके जरिये वह सूरदास की जमीन हड़प कर सकता है। दूसरी ओर उसका लड़का प्रभुसेवक एक सीधा-सादा युवक है। वह कविता-प्रेमी और भावुक प्रकृति का है। एक स्थान पर वह अपने पुत्र प्रभुसेवक को कहता है — .

"मुझे निश्चय था कि तुम जीवन और धर्म के संबंध को भली-भांति समझते हो, पर अब ज्ञात हो गया कि तुम, सोफी और अपनी माता की भांति भ्रम में पड़े हुए हो। क्या तुम समझते हो कि मैं और मुझ जैसे हजारों आदमी जो नित्य गिरजे जाते हैं, आंख बन्द करके ईश-प्रार्थना करते हैं, धर्मानुराग में डूबे हुए हैं ? कदापि नहीं। अगर अब तक तुम्हें नहीं मालूम है तो अब मालूम हो जाना चाहिए कि धर्म केवल स्वार्थ-संगठन है। संभव है तुम्हें ईशा पर विश्वास हो, शायद तुम इन्हें खुदा का बेटा या कम से कम महात्मा समझते हो, पर मुझे तो यह भी विश्वास नहीं है। मेरे हृदय में उसके प्रति उतनी ही श्रद्धा है जितनी किसी मामूली फकीर के प्रति। उसी प्रकार फकीर भी दान और क्षमा की महिमा गाता फिरता है, परलोक के सुखों का राग गाया करता है। वह भी उतना ही त्यागी, उतना ही दीन, उतना ही धर्मरत है। लेकिन इतना अविश्वास होने पर भी मैं रविवार को सौ काम छोड़कर गिरजे में अवश्य जाता हूं। न जाने से समाज में अपमान होगा, उसका मेरे व्यवसाय पर बुरा असर पड़ेगा। फिर अपने ही घर में अशांति फैल जायगी।" 59

"मंगलसूत्र" प्रेमचन्दजी का अपूर्ण उपन्यास है। पर जितना लिखा गया है उतने से यह ज्ञात होता है कि शायद इसमें प्रेमचन्दजी

एक शिक्षक के जीवन के द्वारा अपने ही जीवन की कहानी कहने जा रहे थे । इस उपन्यास में भी पिता-पुत्र के वैचारिक टकराव को रेखांकित किया गया है । इस में देवकुमार का पुत्र अपनी पैतृक संपत्ति के लिए एक मुकदमा दायर करता है । संतकुमार चाहता है कि उसके पिता देवकुमार स्वयं को मुकदमें× मुकदमे के अनुसार ढाल लें । देवकुमार कहते हैं कि दो लाख तो क्या दस लाख रूपये मिलते हों , तब भी वे अपनी आत्मा को बेचने के लिए तैयार नहीं है । इस पर संतकुमार बड़े तीखे शब्दों में कहता है --

"अगर आप इसे आत्मा को बेचना कहते हैं , तो बेचना पड़ेगा । इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं है । और आप इस दृष्टि से इस मामले को देखते ही क्यों हैं ? धर्म वह है जिससे समाज का हित हो । अधर्म वह है जिससे समाज का अहित हो । इससे समाज का कौन-सा अहित हो जायगा , यह आप बता सकते हैं ? " [60]

इस प्रकार पारिवारिक संघर्ष के चित्रण में पिता-पुत्र के टकराव भी एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है ।

(घ) पति-पत्नी में खटराग :

यह तो पहले बताया जा चुका है कि प्रेमचन्दजी का विवाह एक अत्यंत ही× भद्दी और कुरूप स्त्री से करवा दिया गया था । उसके साथ प्रेमचन्दजी की कभी नहीं पटी । आत्महत्या के असफल प्रयत्न के पश्चात् वह मैके गई तो फिर कभी नहीं आयी । बाद में प्रेमचन्दजी ने अपने परिवार वालों के विरोध के बावजूद शिवरानी देवी नामक बाल-विधवा से विवाह किया । परंतु चाची (विमाता) के कारण कई बार घर में कलह का वातावरण निर्मित होता था और उसके कारण निश्चित रूप से पति-पत्नी में भी कभी झगड़ा होता होगा । दूसरे प्रेमचन्दजी का परिवार तो बहुत बड़ा था , वहाँ भी पति-पत्नियों में झगड़े होते रहे होंगे । इन सब कारणों से उनके साहित्य में पति-पत्नी के बीच खटराग के भी कई प्रसंग आते हैं ।

"सेवासदन" के सुमन और गजाधर ; "निर्मला" के निर्मला और तोताराम ; "कर्मभूमि" के अमरकांत और सुखदा ; "रंगभूमि" के इन्दु और महेन्द्रसिंह तथा रानी जाह्नवी और राजा भरतसिंह ; "गोदान" के होरी और धनिया ; "रंगभूमि" के हो भैरों और सोहागी जैसे पात्रों में हम इन पारिवारिक झगड़ों के कलहों को देख सकते हैं । इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि उनमें प्रेमालाप कभी नहीं होता । "गोदान" की धनिया होरी को जी-जान से चाहती है , परंतु आर्थिक कारणों से उनमें प्रायः कलह होता है ।

ठीक इसी प्रकार "ब्रह्म का स्वांग " , "दफ्तरी" , "सौत" , " सुहाग की साड़ी " , " सोहाग का शव " , "लांछन" , "सती" , "घरजमाई" , "अलग्योझा" , "शांति" , "नया विवाह" आदि कई कहानियों में हमें पति-पत्नी के झगड़े मिलते हैं । इन झगड़ों के कारणों में प्रायः संयुक्त-परिवार प्रथा तथा घर की आर्थिक बदहाली जैसे कारण दृष्टिगत होते हैं । सौतेली मां के कारण भी ऐसे खटराग होते हैं । कहीं-कहीं विधवा बहन के कारण पति-पत्नी में खटराग पैदा होता है , जैसे "निर्मला" में ।

(ख) सास-बहू तथा भाभी-ननद के झगड़े :

हमारे यहाँ शायद ही ऐसा कोई परिवार मिलेगा , जहाँ सास-बहू के झगड़े न होते हों । परिवार तो प्रेमचन्द का भी काफी बड़ा था । मुंशी अजायबलाल के समय तो अन्य दो भाइयों का परिवार भी उनमें ही सम्मिलित था । दूसरे प्रेमचन्द ने अपने जीवन का एक खासा बड़ा हिस्सा गांवों में काटा है , अतः उन्होंने दूसरे लोगों के परिवारों में भी यह सब देखा है । "गोदान" की झुनिया जब अपना स्वार्थी होता है , जब गोबर उसे छोड़कर चला गया था , तब तो धनिया के शरण में आती है और उसे माँ कहकर संबोधित करती है ; परंतु गोबर जब शहर से वापस आता है और देखती है

कि वह शहर में अच्छा कमा रहा है तो धनिया के साथ उसका झगड़ना शुरू हो जाता है। वह गोबर को चढ़ाती है। नौबत यहां तक आती है कि जाते समय गोबर धनिया से मिलना भी पसंद नहीं करता —

"चलते समय होरी ने आर्द्र कंठ से कहा — बेटा तुमसे कुछ कहने का मुंह तो नहीं है, किन्तु कलेजा नहीं मानता, क्या जरा जाकर अपनी अभागिन माता के पांव छू लोगे, तो कुछ बुरा होगा? जिस माता की कोख से जन्म लिया, और जिसका रक्त पीकर पले हो, उसके साथ इतना भी नहीं कर सकते? ... गोबर ने मुंह फेरकर कहा — मैं उसे अपनी माता नहीं समझता।"[6]

सास-बहू के झगड़ों का चित्रण "अलग्योझा" कहानी में भी मिलता है। पन्ना एक अच्छी सास है, फिर भी मुलिया उससे जलती-भुनती रहती है, क्योंकि उसने अपने मैके में सुन रखा था कि पन्ना ने अपने पति के समय में उसके पति रग्घू को बहुत दुःख दिया था। पिता की मृत्यु के बाद रग्घू विमाता पन्ना को बहुत मानता था और पन्ना भी रग्घू की भलमनसाहत से प्रभावित होकर उसे अपना सगा बेटा समझने लगी थी। मुलिया को यह बात खलती है कि उसका पति रात-दिन खटता रहता है, और पन्ना राजरानी की तरह राज करती है। अतः वह आयेदिन कोई-न-कोई बखेड़ा खड़ा करती है। अन्ततः पन्ना रग्घू का विचार करके उसे अलग रहने की अनुमति दे देती है।

"घरजमाई" कहानी की सास भी अच्छी है, परंतु पति की सौतेली मां होने के कारण गुमानी पति हरिधन को सास के खिलाफ़ उकसाती रहती है। परिणाम यह होता है कि हरिधन अपने हिस्से को बेच-बाच कर ससुराल चला जाता है और सारी पूंजी सास के चरणों में धर देता है। बाद में हरिधन का मान धीरे-धीरे घटने लगता है और नौबत यहां तक आती है कि ससुरालवाले उसका अपमान तक करने लगते हैं। तब वह अपने घर लौट आता है। उसका

हिस्सा तो वह पहले ही ले चुका था । वस्तुतः नैतिक दृष्टि से अब उसका उस घर पर कोई अधिकार नहीं था , फिर भी उसकी चाची (विमाता) ने उसे रख लिया । गुमानी दूसरा घर कर लेती है । उस पर चाची जब पंचायत बुलाने की बात करती है , तब हरिधन कहता है — " नहीं काकी , बहुत अच्छा हुआ । ला , महावीरजी को लड्डू चढ़ा आऊं । मैं तो डर रहा था , कहीं मेरे गले न आ पड़े । भगवान ने मेरी सुन ली । मैं वहां से यही ठानकर चला था , अब उसका मुंह न देखूंगा ।" 62

"बेटोंवाली विधवा" कहानी में पंडित अयोध्यानाथ का देहान्त हो जाने पर उनकी पत्नी फूलमती की उपेक्षा होने लगती है । चालीस वर्षों तक उनका घर में एकछत्र राज रहा । चार लड़के थे । चारों की शादी हो चुकी थी । बहुएं पहले सास के खिलाफ एक शब्द ऊंचा नहीं बोल सकती थी , परंतु ससुर के मरते ही सब सरकश हो जाती हैं । यहां समस्या का एक पहलू यह भी है कि बेटे ही मां की अवज्ञा करना शुरू कर देते हैं , फलतः बहुओं के दिमाग चल जाते हैं ।

"बूढ़ी काकी" को काकी सगी सास तो नहीं है , चचिया सास है । उसकी सारी संपत्ति हथिया लेने के बाद पति-पत्नी दोनों काकी की अवज्ञा करना शुरू कर देते हैं । यहां बहू तो फिर भी भगवान से थोड़ा डरती है , पर बेटा (जेठ का लड़का) ही ज्यादा सताता है ।

"निर्मला" उपन्यास तथा "सुभागी" , "बेटोंवाली विधवा" जैसी कहानियों में भाभी-ननद के झगड़े और खटराग मिलते हैं । "निर्मला" उपन्यास की रुक्मिणी बाल-विधवा है , अतः वह निर्मला से जलती-भुनती रहती है । शुरू में भाई तथा बच्चों को भी निर्मला के विरुद्ध उकसाने का प्रयत्न करती है , परंतु बाद में निर्मला की करुण स्थिति से वह भी पिघल जाती है और उसके प्रति काफी करुणार्द्र हो जाती है । "झांकी" तथा "सुभागी" में भाभियां भाइयों को (अपने पतियों को) बहनों के खिलाफ उकसाती हैं । "बेटोंवाली विधवा" में तो

भाई-भाभी बहन कुसुम के नैतिक अधिकार को विस्मृत करते हुए दहेज न दिया जाने से उसका ब्याह चालीस साल से अधिक उम्र वाले दोन-[illegible] से कर दिया जाता है । माँ कुलवंती भी कुछ नहीं कर सकती, क्योंकि उसके ब्याहों के गहने तो उमानाथ और दयानाथ पहले ही हड़प कर चुके थे । हिन्दू परिवारों में विधवा माँ की क्या स्थिति हो सकती है, उसका बड़ा ही करुण और हृदयद्रावक चित्रण इस कहानी में हुआ है । सुमन और निर्मला के विवाह भी अभावों से होते हैं, परंतु वहाँ गंगाजली और कल्याणी के सामने सचमुच विवशता थी, यहाँ तो संपन्नता के रहते हुए भी सगे भाई अपनी बहन के साथ अन्याय करते हैं । "औरत होने की सज़ा" नामक पुस्तक में भी अरविंद जैन बिलकुल सही लिखते हैं कि —

"बहन होकर जायदाद में बराबर के अधिकार माँगोगी तो पिताजी को बहकाकर जल्दी से कहीं शादी करवा दूँगा और वसीयत में सबकुछ अपने नाम लिखवाकर ताला बन्द कर दूँगा । ससुराल जाओगी तो चार दिन में अक्ल ठिकाने आ जायेगी । तीज, त्योहार, होली, दिवाली, राखी, भैया दूज, भात पर जो दें उसे सिर-माथे लगाओगी तो ठीक, नहीं तो आगे से वो भी बन्द । संयुक्त हिन्दू परिवार की संपत्ति में बंटवारा कराने का तो तुम्हें कोई हक ही नहीं है, वो सब हम मर्दों का मामला है[63] ..... पिताजी की संपत्ति में तुम्हें बराबर का हक है, लेकिन सिर्फ तब जब वो अपनी वसीयत लिखकर न मरे हों । बिना वसीयत लिखे मैं उन्हें मरने दूँगा ? वसीयत मेरे नाम नहीं लिखेंगे तो क्या बुढ़ापे में सड़क पर भीख माँगेंगे ?"[64]

अध्याय के अंत में उसका समग्राकलन करने पर हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँच सकते हैं ——

§1§ आर्थिक एवं पारिवारिक संघर्ष अधिकांशतः अन्तःस्यूत होते हैं । कई बार आर्थिक कारणों से पारिवारिक कठिनाइयाँ पैदा

होती हैं, तो कहीं पर पारिवारिक कारणों से आर्थिक मुसीबतें ।

(2) आर्थिक संघर्षों के कारण लेखक की अपनी जीवन-दृष्टि सदैव शोषितों के पक्ष में रही है । उन्होंने शोषितों के आर्थिक संघर्ष में सौन्दर्य और गौरव का अनुभव किया है ।

(3) आर्थिक संघर्ष के प्रत्यक्ष भुक्तभोगी रहने के कारण लेखक की वस्तु-संकल्पना वस्तुवादी रही है और अपनी सूक्ष्म व पैनी दृष्टि से उन्होंने शोषण के नाना कोणों को यथार्थतः उद्घाटित किए हैं । लेखकीय संवेदना भी प्रायः उन पात्रों के प्रति रही है जो इस आर्थिक संघर्ष की चक्की में पिसते रहे हैं ।

(4) धनाभाव के कारण प्रायः लोगों की असमय मृत्यु होती रही है । इसके कारण अनेक सामाजिक समस्याएं भी निःसृत होती हैं । इसके कारण ही अनमेल ब्याह, गबन, स्वास्थ्य की खराबी, किसान से मजदूर होने की स्थिति आदि का निर्माण होता है । प्रेमचन्द हमेशा आर्थिक दृष्टया तंगदस्ती में रहे हैं तथा उन्होंने गांवों में ऐसे लोगों को देखा है, अतएव उक्त स्थितियों को वे यथार्थतः उकेर सके हैं ।

(5) पारिवारिक संघर्षों में परिवार का टूटना-बिखरना, सौतेली मां के दुर्व्यवहार, पति-पत्नी में टकराव, पिता-पुत्र में टकराव, सास-बहू तथा भाभी-ननद के झगड़ों आदि को परिगणित कर सकते हैं । इन पारिवारिक कलहों का यथार्थ चित्रण करने में लेखक सफल हुए हैं, क्योंकि वे स्वयं उसमें पले-बढ़े हुए हैं ।

====== XXXXXXX ======

:: संदर्भिका ::

§1§ कलम का मजदूर : पृ. 24 §2§ गोदान : पृ. 117 ।

§3§ द्रष्टव्य : रंगभूमि : पृ. 499-503 ।

§4§ द्रष्टव्य : "प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार " : पृ. 249 ।

§5§ वही : पृ. 249-250 §6§ गोदान : पृ. 16 ।

§7§ वही : पृ. 16 §8§ वही : पृ. 57 ।

§9§ मानसरोवर भाग-1 : पृ. 122-123 ।

§10§ द्रष्टव्य : आधुनिक ×××××× लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास : डा. पारूकांत देसाई : पृ. 180-182 ।

§11§ द्रष्टव्य : कफन : मंजूषा : सं. अमृतराय : पृ. 16-26 ।

§12§ निर्मला : पृ. 30 §13§ द्रष्टव्य : निर्मला : पृ. 34 ।

§14§ वही : पृ. 153 §15§ सेवासदन : पृ. 5 ।

§16§ वही : पृ. 7 §17§ मंजूषा : पृ. 18 ।

§18§ द्रष्टव्य : गोदान : पृ. 32-33 । §19§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 13 ।

§20§ द्रष्टव्य : गोदान : पृ. 276 । §21§ रंगभूमि : पृ. 359 ।

§22§ कुछ विचार : पृ. 18 ।

§23§ डा. देसाई की व्यक्तिगत डायरी से ।

§24§ रंगभूमि : पृ. 560 §25§ वही : पृ. 558 ।

§26§ "प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार " : पृ. 335-336 ।

§27§ "हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य " : पृ. 96 ।

§28§ कलम का मजदूर : पृ. 114 §29§ गोदान : पृ. 2 ।

§30§ मानसरोवर भाग-5 : पृ. 206 ।

§31§ मानसरोवर भाग-6 : पृ. 218-219 ।

§32§ द्रष्टव्य : कलम का मजदूर : पृ. 10 §33§ रंगभूमि : पृ. 551 ।

§34§ मंजूषा : पृ. 27 §35§ गोदान : पृ. 357 ।

§36§ "प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार : पृ. 332 ।

§37§ डा. पारूकांत देसाई : युगनिर्माता प्रेमचन्द : पृ. 22 ।

(38) द्रष्टव्य : गोदान : पृ. 222 ।

(39) मानसरोवर भाग-4 : पृ. 190 (40) वही : पृ. 195 ।

(41) कफन का संग्रह : पृ. 22 ।

(42) मानसरोवर भाग-5 : पृ. 119 ।

(43) मानसरोवर भाग-7 : पृ. 171 ।

(44) वही : पृ. 172 (45) वही : पृ. 172 ।

(46) मानसरोवर भाग-5 : पृ. 186-187 ।

(47) मानसरोवर भाग-4 : पृ. 189 ।

(48) मानसरोवर भाग-1 : पृ. 148 ।

(49) गोदान : पृ. 45 (50) मानसरोवर भा-1 : पृ. 13 ।

(51) वही : पृ. 13 (52) "प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृतित्व : डा. हंसराज रहबर : पृ. 5 ।

(53) कर्मभूमि : पृ. 13 (54) मानसरोवर भा-2 : पृ. 322-325 ।

(55) निर्मला : पृ. 133 । (56) डा. पारूकांत देसाई की एक धपिका ।

(57) मानसरोवर भा-1 : पृ. 264 (58) द्रष्टव्य : वही : पृ. 55-67 ।

(59) रंगभूमि : पृ. 80 ।

(60) मंगलसूत्र व अन्य रचनाएं : पृ. 226 ।

(61) गोदान : पृ. 231 ।

(62) मानसरोवर भा-1 : पृ. 156 ।

(63) संयुक्त हिन्दू परिवार में मिताक्षरा स्कूल में पुत्र ही संपत्ति बंटवा सकते हैं ।

(64) औरत होने की सजा : अरविन्द जैन : पृ. 26-27 ।

******** xxxxxx ********